ओ३म्

वैदिक संस्कृति का उद्घोषक

वैदिक सार्वदेशिक

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली का साप्ताहिक मुख-पत्र

शुल्क :- एक प्रति 5 रुपया (भारत में) वार्षिक 250 रुपये तथा आजीवन 2500 रुपये

वर्ष 19 अंक 19 कुल पृष्ठ-8 5 से 11 सितम्बर, 2024 दयानन्दाब्द 200 सृष्टि सम्वत् 1960853125 सम्वत् 2081 श्रा. कृ.-12

शिक्षक दिवस पर विशेष

सुयोग्य चरित्रवान, समर्पित शिक्षक ही विद्यार्थियों का जीवन निर्माण करने में सक्षम हो सकते हैं

– स्वामी आर्यवेश

शतपथ ब्राह्मण का यह वचन ''मातृमान, पितृमान, आचार्यवान पुरुषो वेदः'' अर्थात् बालक के जीवन रूपी महल के निर्माण में माता–पिता तथा गुरु तीनों ही शिल्पकारों की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार राष्ट्र की उन्नति के तीन आधार स्तम्भ माने गये हैं। (1) आचार्य, (2) उपदेशक, (3) नेता। इन तीनों में आचार्य का स्थान सर्वप्रथम है। क्योंकि आचार्य से ही शिक्षा प्राप्त करके उपदेशक और नेताओं का निर्माण होता है। जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् माता, पिता, आचार्य अपने उत्तरदायित्व को भली भांति निभायें तभी बच्चों में सर्वोत्तम संस्कार तथा जीवन जीने की कला प्राप्त होती है। दुर्भाग्य से यदि माता–पिता शिक्षित नहीं हैं तो बच्चों में स्वाभाविक रूप से आये कुसंस्कारों को भी आचार्य या शिक्षक ही छुड़ाता है। अथर्ववेद के मंत्र में आचार्य शिष्य को सम्बोधन प्रदान कर रहा है।

यनेदसो मात क तच्छेषेपिता का ताच्च यत्।
उन्मोचन प्रभोचने उभे वाचा वदामि।।
– अथर्व. 5–30–4

जो तू माता के किए प्रमाद रूप पाप से और पिता के किये गये प्रमाद रूप पाप से विद्याध्ययन रूप जागृति प्राप्त नहीं कर सका, अभी तक सोया पड़ा है तो मैं आचार्य वाणी द्वारा तुझे सन्मार्ग पर लगाता हूँ। कहने का तात्पर्य यह है कि शिष्य रूपी अनगढ़ पत्थर को अपनी वाणी रूपी छेनी से तराश कर सुगढ़ रूप प्रदान करने वाले कलाकार को शिक्षक या आचार्य कहते हैं। माता–पिता के द्वारा बालक का आंतरिक व सामाजिक निर्माण होता है। लेकिन आचार्य या शिक्षक अपने उपदेशों द्वारा अपने अर्जित ज्ञान द्वारा बालक का बौद्धिक निर्माण करता है।

आज के छात्रों का बौद्धिक एवं व्यावहारिक ज्ञान देखकर शिक्षकों की प्रतिबद्धता और निष्ठा का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसा नहीं है कि शिक्षकों द्वारा छात्रों में ज्ञान का संचार नहीं किया जा रहा लेकिन आज के शिक्षक मात्र प्राविधिक कौशल को आगे बढ़ाने में लगे हुए हैं जो ज्ञान देने का पूर्ण उद्देश्य न होकर मात्र उसका एक भाग है। शिक्षक का उत्तरदायित्व होता है कि वह बालक का सर्वांगीण विकास करे जिससे बच्चे के अन्दर उच्च संस्कार पैदा हों तथा वह रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, संकीर्णताओं और दुर्व्यसनों से दूर रह सके तथा उसमें प्रेम सद्भाव एवं सहयोग की भावना का उदय कर दे। लेकिन क्या आज की शिक्षा व्यवस्था और शिक्षक इस तरह का ज्ञान प्रदान कर पा रहे हैं? छात्रों में चारित्रिक एवं नैतिक गुणों का अभाव जिस रफ्तार से बढ़ रहा है वह समाज के लिए चिन्ता का विषय बन गया है। हालात इतने खराब हो गये हैं कि बड़ी–बड़ी डिग्रियाँ प्राप्त युवक नैतिकता और विवेक जैसे शब्दों को परिभाषित भी नहीं कर सकते तो वह युवक इन बातों को व्यवहार में कैसे उतार सकते हैं, यह स्थिति अत्यन्त शोचनीय है। इन सबका एक ही कारण नजर आता है वह है हमारी दूषित शिक्षा प्रणाली। अंग्रेज चले गये लेकिन मैकाले द्वारा प्रदत्त शिक्षा प्रणाली ने देश में पूरी तरह से पैर पसार लिये हैं। परिवार, समाज, राष्ट्र तथा उसके सदस्य वैसे ही होंगे जैसी वहाँ की शिक्षा प्रणाली होगी। जैसी शिक्षा वैसा समाज अथवा जैसे विद्यार्थी वैसे राजअधिकारी व कर्मचारी, क्योंकि आज शिक्षा प्रणाली का मुख्य लक्ष्य धन कमाना है। अधिकांश नागरिक देश पूजा के स्थान पर पेट पूजा को ही अपने जीवन का लक्ष्य समझते हैं। अतः आज का पढ़ा–लिखा व्यक्ति अधिकारी या कर्मचारी अपने ज्ञान का प्रयोग समाज सेवा या देश सेवा में नहीं करता अपितु वह केवल कामचोरी, झूठ–फरेब, हेराफेरी व रिश्वतखोरी अथवा अन्य अनियमितताओं को करने में अपनी बुद्धि को लगाना जीवन का लक्ष्य समझता है। क्योंकि उसे बचपन से युवावस्था तक मिली शिक्षा में विज्ञानवादी, सेवाभावी, मानवतावादी या राष्ट्रवादी होने के संस्कार नहीं मिले। स्कूलों के अधिकतर शिक्षकों का पढ़ाने का उद्देश्य केवल मात्र धन कमाना होता है, क्योंकि वह भी उसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर शिक्षक बने हैं। अतः वर्तमान शिक्षा प्रणाली, देश को लोभवाद, कामुकतावाद, हिंसावाद, आतंकवाद तथा राष्ट्रद्रोह प्रदान कर रही है। आधुनिकता का लिवास ओढ़े हुए आज के महाविद्यालय लार्ड मैकाले की शिक्षा का धन्यवाद करने में गर्व का अनुभव करते हैं। आज की शिक्षा पाश्चात्यता की जंजीरों में जकड़ी हुई है। हमारा देश स्वतन्त्र तो अवश्य हो गया लेकिन शिक्षा अभी भी कैद है। उसमें भारतीयता के दर्शन नहीं होते। वैदिक संस्कारों को लोग भूलते जा रहे हैं। पहले बुरा काम करने में लोग डरते थे अब दिल खोलकर खुलेआम बुरे काम करते हैं। दूसरों का अहित करने, अन्यों का गला काटकर अपने लिये आमोद–प्रमोद के साधन, कोठी, कार आदि जुटाने में नहीं चूकते उनका अपना लाभ होना चाहिए, चाहे व्यक्ति, समाज, राष्ट्र का कितना ही अहित क्यों न हो जाये इस बात की कोई चिन्ता उन्हें नहीं है। यह सब क्यों हो रहा है इसका एक ही कारण है कि अच्छी शिक्षा की कमी, वेदज्ञान व संस्कृति का ह्रास।

यदि समाज को संस्कारित करना है, राष्ट्र का निर्माण करना है तो विशेष रूप से शिक्षा को अपनी भारतीय संस्कृति, इतिहास व प्राचीन गौरव से जोड़ना होगा। गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली को बढ़ावा देना होगा। गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली में जंगलों में एकान्त स्थान पर नगरों के कोलाहल से दूर रमणीक विद्याध्ययन केन्द्रों पर ज्ञानार्जन होता था जहाँ अन्य विद्याओं के साथ–साथ वेदों का ज्ञान दिया जाता था, चरित्र को सुधारा जाता था। बच्चों में चारित्रिक ज्ञान कूट–कूट कर भरा जाता था जीवन को संस्कारित करते हुए बच्चों का सर्वांगीण विकास किया जाता था और वहीं से निकले छात्र बड़े होकर ऋषि महर्षि, राष्ट्रभक्त योद्धा, महापुरुष एवं विद्वान् बनते थे। परिवार व राष्ट्र का नाम ऊँचा करते थे। उनका जीवन सत्य पथानुगामी होता था। परोपकार उनका धर्म होता था, वह सदा मानवता के लिए जीते थे, अधर्म से दूर रहते थे। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, योगीराज श्रीकृष्ण, हरिश्चन्द्र, स्वामी दयानन्द तथा अन्य महापुरुष ऐसे हुए हैं जो अपनी महानता के कारण प्रसिद्ध हुए हैं। इसके विपरीत आज की शिक्षा में चरित्र का ज्ञान नहीं दिया जाता। वेदादि शास्त्रों के ज्ञान के अभाव में भ्रष्टाचारी, अनाचारी, दुराचारी व्यक्तियों का निर्माण हो रहा है जो राष्ट्र को निरन्तर अवनति के गर्त में धकेलते जा रहे हैं।

अब जब पूरी शिक्षा व्यवस्था ही दूषित है तो इन परिस्थितियों में हमारे शिक्षकों को अत्यधिक संयमित, चरित्रवान एवं प्रतिबद्ध होने की आवश्यकता है। चरमराई हुई तथा दूषित शिक्षा व्यवस्था को सुधारने के लिए न केवल शिक्षक बल्कि छात्रों एवं अभिभावकों को भी अपने चरित्र एवं सोच में बदलाव लाना होगा। शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर स्वस्थ रहते हुए उत्तम कार्य करने की इच्छा जगानी होगी न केवल अपने विषय में बल्कि दूसरे विषयों का भी व्यवहारिक ज्ञान रखना होगा एवं नैतिक एवं चारित्रिक गुणों को ऊपर लाना होगा। शिक्षकों को अपने कर्तव्यों के निर्वाह के लिए ईमानदारी से अत्यधिक परिश्रम करना होगा। क्योंकि एक सच्चा शिक्षक छात्रों में पुस्तकीय ज्ञान ही अवस्थित नहीं करता बल्कि उसके सर्वांगीण विकास के लिए प्रयत्नशील रहता है। छात्रों को आत्मशून्य होने से बचाने के लिए शिक्षकों को दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ आगे आना होगा। लेकिन शिक्षकों को कर्त्तव्य परायण बनाने के लिए छात्रों को भी संयमित होना पड़ेगा। सबसे पहले तो उन्हें शिक्षकों के प्रति श्रद्धा बढ़ानी होगी, छात्रों को शिक्षकों के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करना होगा। क्योंकि शिक्षक और छात्र का सम्बन्ध जो दुनियाँ में सबसे श्रद्धेय और सम्माननीय सम्बन्ध है उसे पुनर्जीवित करने की अत्यधिक आवश्यकता है। शिक्षकों के लिए आवश्यक है कि वह ब्रह्मचर्य सिद्ध आचारवान संस्कारवान तथा योग्य हों तभी राष्ट्र का सर्वांगीण विकास होगा और वह उन्नति के शिखर पर पहुँचेगा। क्योंकि विद्यार्थियों का जीवन कहीं बनता है तो गुरुकुलों या विद्यालयों में। सुयोग्य, चरित्रवान शिक्षकों तथा आचार्यों के द्वारा ही विद्यार्थियों का जीवन निर्माण ही राष्ट्र निर्माण है।

– सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली–2

सम्पादक - प्रो. विट्ठलराव आर्य

14 सितम्बर पुण्य तिथि पर विशेष

तेजस्वी सूर्य - स्वामी विरजानन्द

यह सर्व विदित है कि नदी में भयंकर बाढ़ उतर जाने के पश्चात् नदी एकदम शान्त हो जाती है, किन्तु अपने दोनों कगारों पर न जाने कहां कहां का कूड़ा करकट छोड़ जाती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए मुख्य रूप से तीन बार प्रयास किए गए। प्रथम 1757 में बक्सर का युद्ध, द्वितीय 1857 का महान क्रान्तिपूर्ण युद्ध तथा सन् 1947 में अन्ततः विजय श्री प्राप्त होकर यह देश स्वतन्त्र हुआ। पूर्वोक्त शब्दावली के अनुसार सन् 1857 का महान क्रान्तिकारी युद्ध कतिपय ज्ञात अज्ञात कारणों से असफल हो गया। तब इसके पश्चात् सम्पूर्ण देश में एक मुर्दानगी छा गई। पराजित जाति के लिए इससे बढ़कर लज्जा पूर्ण और अन्य कोई कृत्य नहीं होगा। इस क्रान्ति के ठीक 12 वर्ष पश्चात देश के पश्चिमोत्तर प्रान्त में भयंकर दुर्भिक्ष (अकाल काला बुखार) पड़ गया। देश के सभी भागों में इसकी छाया पड़ी और सहस्रों लोग कस्बों ग्रामों को छोड़कर शहरों की ओर आने लगे। इन पंक्तियों के लेखक के पितामह एवं पितामही इन पीड़ापूर्ण दुर्भिक्ष की बातें सुनाया करते थे, जिसके कारण भयभीत होकर रोमांचित हो जाता था। यह दुर्भिक्ष बाढ़ के पश्चात् किनारों का कूड़ा-करकट ही सिद्ध हुआ। इतिहास के जानकार जानते हैं कि इंग्लैंड में बैठी विक्टोरिया रानी ने दुखी, पीड़ित, शोषित भारतीय जनता को शासन सुधार का एक तोहफा देकर आंसू पोछने का कार्य किया, किन्तु बार-बार आंसू क्यों आते हैं, इसके कारणों से अपना मुख मोड़ लिया। सात समुन्द्र पार बैठी महारानी विक्टोरिया द्वारा गुलामों के साथ जो व्यवहार किया गया, वह माता के वात्सल्य, करुणा, त्याग और शान्ति के गुणों के बिल्कुल विपरीत था। विश्व में गुलाम जातियों के साथ ऐसा ही व्यवहार होता है।

ऐसे भीषण समय में स्वामी विरजानन्द की कुटिया के सम्मुख 34-35 वर्षीय हृष्ट-पुष्ट, 6 फुट 2 इंच लम्बा, गौर वर्ण, चमकता हुआ ललाट धारण किए एक संन्यासी उपस्थित हो गया। यहां आने के पूर्व उक्त युवा संन्यासी मथुरा के रंगेश्वर महादेव मन्दिर में आकर कुछ समय ठहरा। इस युवा संन्यासी के वेश का चित्रण करते हुए प्रसिद्ध बंगाली लेखक बाबू देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय अपने ग्रन्थ में लिखते हैं - ''उस संन्यासी की आयु 34 या 35 वर्ष की होगी। उसके वस्त्र गेरुए थे, कण्ठ (गले) में रुद्राक्ष की माला लहरा रही थी, हाथ में मात्र एक बड़ा सा लोटा अथवा घड़ा था तथा साथ में कुछ पुस्तकें थीं। संन्यासी की आकृति में कुछ विशेषत्व है, उसकी बातचीत और भावभंगिमा में कुछ असाधारणतत्व का परिचय मिलता है। वह कुछ दिन के पश्चात् दण्डी स्वामी विरजानन्द की पाठशाला में आ पहुंचा और उसे यथारीति प्रणिपात् के पश्चात् पढ़ने की इच्छा प्रकट की।'

उपनिषद् में एक कथा आती है, जिसमें विद्या एक विद्वान् ब्राह्मण से कहती है - मुझे किसी अपात्र को मत देना अन्यथा मेरा रूप कालिमामय हो जायेगा। स्वामी विरजानन्द जी अपनी पाठशाला में प्रवेश देते समय छात्र के पात्रापात्र का भलीभांति परीक्षण करते थे। प्रविष्ठ छात्रों से वे न तो कोई शुल्क लेते थे और न समाप्ति पर कोई गुरु दक्षिणा। आजकल तो झंडे को प्रमाण करवाकर दक्षिणा बटोरने में तनिक भी लज्जा नहीं महसूस की जाती है। फिर उस गुरु दक्षिणा का क्या होता है, वे झण्डेधारी ही जाने।

हाँ, तो अपने नियम के अनुसार दण्डी संन्यासी ने उपस्थित संन्यासी की मेधाबुद्धि की परीक्षा करने तथा 2-4 बातें करने के पश्चात् अनुभव कर लिया कि यह संन्यासी विद्यार्थी पूर्ण जिज्ञासु है तथा अनन्य असाधारण मेधावी है। कुछ क्षण रुककर स्वामी विरजानन्द ने कहा - 'अनार्ष ग्रन्थों की बातें एकदम भूल जाओ। यदि इन अनार्ष ग्रन्थों की शिक्षा का अंशमा भी मन में रहेगा तो आर्ष ग्रन्थों की शिक्षा बद्धमूल न हो सकेगी। अतः मनुष्य प्रणीत पुस्तकों के उपदेश को एकदम भूल जाओ और इतना ही नहीं, तुम्हारे पास जो मनुष्य प्रणीत ग्रन्थ हैं, उन्हें इसी यमुना में फेंक आओ।' इस आदेश को सुनकर जब दयानन्द वहां से जाने लगे, तब उस उत्कृष्ट संन्यासी ने इस दयानन्द से एक और भी बड़ी महत्वपूर्ण बात कह डाली। चूंकि तुम संन्यासी हो इससे प्रतीत होता है कि तुम्हारे भोजन और निवास के सम्बन्ध में कोई स्थिरता नहीं हो सकती, इसलिए भोजन और आवास की व्यवस्था स्वयं

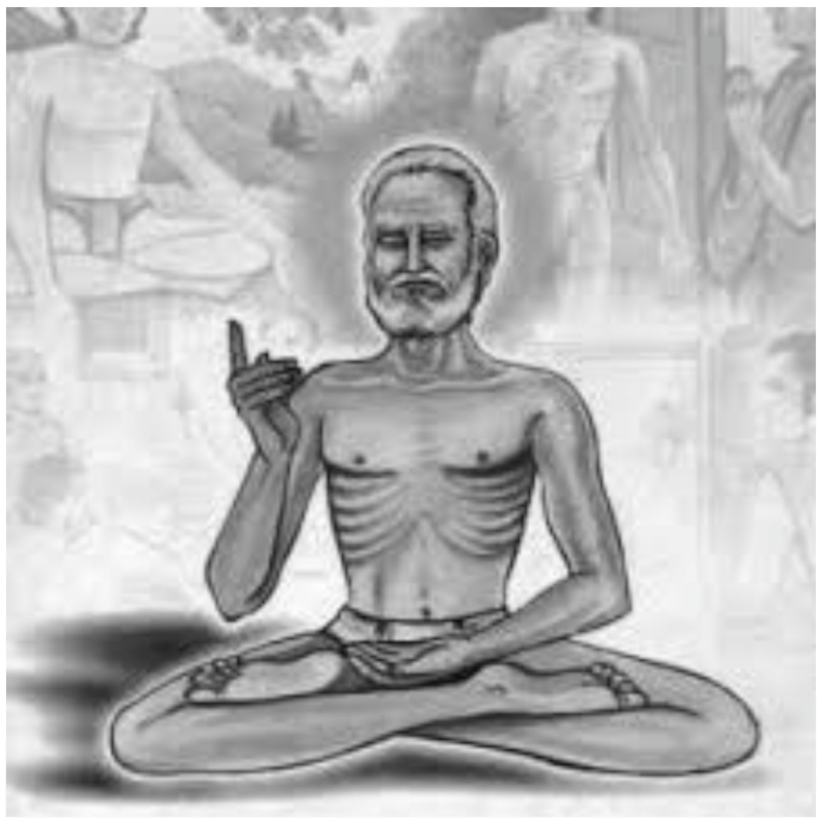

आपको प्राथमिक रूप से करनी होगी। यह युवा संन्यासी भी कोई कम न था, वह तत्काल उन्हें आश्वासित कर वहां से चला गया। परन्तु ..... विरजानन्द पर अपनी छाप छोड़ गया।

यह निर्विवाद सत्य है कि परमात्मा नामक सत्ता पर दृढ़ आस्था रखने वाले सदैव आशावादी एवं उच्च मनोबल के होते हैं। संन्यासी दयानन्द तो इसके साक्षात अवतार थे। उन दिनों मथुरा में ज्योतिषी बाबा अथवा जोशी बाबा का घर सदाशयता और आतिथ्य के कारण बहुत प्रसिद्ध था। इस समय जोशी परिवार में 'अमरलाल' नामक महाशय विद्यमान थे। कहा जाता है कि उनके पूर्वज गुजरात से चलकर यहां आ गए थे। किसी ईश्वरीय प्रेरणा से ही इस युवा संन्यासी से महाशय अमरलाल का साक्षात्कार हो गया। अमरलाल जी भी औदिच्य ब्राह्मण थे। कुछ सौम्य और कुछ साम्य ने परिस्थिति को अनुकूल बना दिया। ब्राह्मणवृत्ति के कारण इस संन्यासी की ओर आकृष्ट हो गए। उस संन्यासी ने अपना मथुरा आने का मन्तव्य आदि सब कुछ बता दिया। तब पं. अमरलाल जी ने प्रसन्न मुद्रा में अपने ही घर पर नियमित रूप से भोजन का प्रबन्ध कर दिया। फिर भी समस्या आवास की शेष रह गई थी। मथुरा के विश्राम घाट के ऊपर वाले भाग में जो लक्ष्मी नारायण मन्दिर है, उसी के नीचे की मंजिल की कोठरी में इस संन्यासी के रहने की व्यवस्था हुई। देखें विरजानन्द चरित, लेखक स्व. देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय, पृष्ठ 185। इस प्रकार रोटी, कपड़ा और मकान की व्यवस्था के बाद संन्यासी का 'ज्ञान यज्ञ' प्रारम्भ हो गया।

कहते हैं, गुरु विरजानन्द जी कभी-कभी पढ़ाते समय दयानन्द दंडी संन्यासी से तर्क करते हुए बहुमत गहराई तक चले जाया करते थे। दण्डी दयानन्द भी समझने लगे थे कि यह गुरुजी भी असाधारण प्रतिभा के हैं। उन्होंने सर्वप्रथम इन्हें पाणिनी का पाठ पढ़ाना प्रारम्भ किया। वे बिना टीका भाष्यादि की सहायता से ही पढ़ाया करते थे। कहा जाता है कि विरजानन्द की वागिन्द्रय से भी नाना शास्त्रों की नाना व्याख्या अविरल रूप से निकलकर शिष्य मंडली को विस्मित करती थी। दयानन्द यह सब अद्भुत और अदृष्टपूर्ण व्यापार देखकर इस दृष्टिहीन (अंधे) अध्यापक को एक अलौकिक पुरुष स्वीकार करने पर बाध्य हुए और जितने विस्मयादिष्ट हुए उतने ही श्रद्धाभारावनत चित्त होकर उनसे पढ़ने लगे।'

स्वामी विरजानन्द भाष्यों में से महाभाष्य पाणिनीकृत अष्टाध्यायी को सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ स्वीकार करते थे। यही कारण था कि दयानन्द की पाणिनी के साथ महाभाष्य को भी पढ़ाया जाने लगा। पढ़ाते समय कभी गुरु शिष्य में वाग्युद्ध भी हो जाता था। दयानन्द की तर्कपटुता देखकर ही विरजानन्द मन ही मन अति प्रसन्न होते थे। वे कभी दयानन्द को कालजिह्व कुलक्कर कहकर पुकारते थे। स्वामी विरजानन्द के शब्दों में - 'कालजिह्व उसे कहते हैं कि जिसकी जिह्वा असत्य खंडन में काल के समान हो। कुलक्कर उसे कहते हैं जो शास्त्रार्थ के समय खूंटे के समान अविचलित रहकर शत्रुपक्ष को परास्त करें।'

स्व. श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के अनुसार - जैसे पुराकालीय समरशिक्षक या शास्त्राचार्यगण किसी सुनिपुत्र शिष्य को पाकर उसे रणभूमि में दुर्जेय बनाने के लिए ब्रह्मास्त्र के प्रयोग तक की शिक्षा दिया करते थे, इसी प्रकार उपस्थित क्षेत्र में भी जो कुछ सिंचित और संबल विरजानन्द के पास था, वह उस सबकी दयानन्द को शिक्षा देने लगे।

कहा जाता है कि स्वामी विरजानन्द के सानिध्य में दण्डी दयानन्द प्रायः तीन वर्ष ही रहे। कतिपय इतिहासकार इस समय को बढ़ाकर यह कहते हैं कि जब दयानन्द दीक्षा प्राप्त कर वहां से चले तब उनकी आयु 41 वर्ष की थी। दीक्षा के समय दयानन्द के पास कुछ न होने के कारण वे नतमस्तक होकर गुरुजी से बोले - 'मेरे पास कुछ नहीं है, मैं क्या देकर गुरु दक्षिणा का कार्य समाप्त करूँ।' तब विरजानन्द ने वात्सल्यपूर्ण शब्दों में अपने शिष्य से कहा - 'मैं तुमसे एक नए प्रकार की दक्षिणा चाहता हूँ। तुम मेरे सामने प्रतिज्ञा करो कि जब तक जीवित रहोगे, तब तक भारत क्षेत्र में आर्ष ग्रन्थों के प्रचार और वैदिक धर्म के विस्तार में प्राण पर्यन्त भी अर्पण कर दोगे। मैं इस प्रतिज्ञा परिपालन को ही तुमसे दक्षिणा रूप में ग्रहण करूँगा।' इसे सुनकर शिष्य बोला 'तथास्तु।' वहां से विदा होते समय विरजानन्द ने शिष्य के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और विरजानन्द के वयोजीर्ण कंधों से वैदिकधर्म की जय पताका अपने बलिष्ठ कंधों पर लेकर मथुरा से प्रस्थित हो गए।

- पं. मनुदेव 'अभय' विद्यावाचस्पति
अ/13, सुदामानगर, इन्दौर (मध्य प्रदेश)-452009

वैज्ञानिक युग में – अवैज्ञानिक मान्यताएँ

– अर्जुनदेव स्नातक

आज विज्ञान का युग है। सृष्टि के अज्ञात रहस्यों का नियमित, व्यवस्थित, बुद्धिगम्य अन्वेषण का नाम विज्ञान है। इस वैज्ञानिक युग में प्राचीन ऋषि-मुनियों द्वारा अन्वेषित तथ्यों की कतिपय वैज्ञानिक साधनों द्वारा परीक्षा की, उन तथ्यों को सत्य एवं विज्ञान सम्मत प्राप्त किया। निश्चय से सत्य की कसौटी पर परीक्षित ऋषि-मुनियों द्वारा वर्णित सृष्टि के नियम, वैज्ञानिक नियम कहलाते हैं। ऋषि-मुनियों द्वारा अन्वेषित तथ्यों का आधार ईश्वरीय ज्ञान वेद रहा है। आधुनिक युग के निर्माता स्वामी दयानन्द ने समस्त विश्व को विज्ञान सम्मत वेद मार्ग पर चलने का आह्वान करते हुए आर्य समाज की स्थापना की। उन्होंने आर्य समाज की प्रगति के लिए विश्व के समस्त मानवों के कल्याण के लिए प्रमुखतया दस नियम निर्धारित किये। उनमें सबसे पहला नियम है –

''सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।''

आश्चर्य यह है कि संसार में सत्य एवं ऋत नियमों (अपरिवर्तनीय नियमों) के रहते हुए भी हम बुद्धिहीन अज्ञान से परिपूर्ण अन्धविश्वासों वाली अवैज्ञानिक मान्यताओं को पूर्ण विश्वास के साथ अपनाये हुए हैं। आचार्य रजनीश ने एक पुस्तक में लिखा है –

''अतीत का अन्धविश्वास से भरा ज्ञान विकासशील मस्तिष्क के लिए जंजीर बन जाता है।''

रजनीश के इस विचार का प्रत्यक्ष वर्तमान में अनेक पढ़े लिखे विज्ञानवेताओं में प्राप्त होता है। जिसने भूगोल विषय में एम. ए. पी. एच. डी. की है वह विद्यालय में छात्रों को विज्ञान के आधार पर पढ़ाता है कि जो स्वयं प्रकाशित होते हैं उनकी संज्ञा नक्षत्र है। इस आधार पर सूर्य नक्षत्र है। चन्द्रमा पृथिवी का चक्कर काटने से उपग्रह है। यह ज्ञान विद्यार्थियों को देता है। घर आकर वही अध्यापक कक्षा आठ, दस पास पंडित के यह कहने से आप पर सूर्य ग्रह का प्रकोप है, चन्द्र ग्रह भी आपके लिए अशुभ करने वाला है – उस समय सूर्य नक्षत्र है तथा चन्द्र उपग्रह है, इस बात को भूल जाता है तथा सामान्य पढ़े लिखे के कथनानुसार ग्रहों की शान्ति के लिए अनुष्ठान कराता है। यह कृत्य सर्वथा अवैज्ञानिक है। अन्य अनेक अवैज्ञानिक मान्यताएँ इस समाज में अर्थात् समस्त विश्व में व्याप्त है। आइये, संक्षेप में उन पर विचार करते हैं :-

गंगा स्नान, तीर्थ-भ्रमण, अस्थि प्रवाह

अनेक लोगों की मान्यता है कि गंगा स्नान से कृत पाप नष्ट होते हैं, यही विचार तीर्थों में भ्रमण करने से माना जाता है। मृत्यु के बाद नदी विशेष में अस्थि प्रवाह करने से मृत आत्मा को मोक्ष प्राप्त होता है। तीर्थ यात्रा करने से पुण्य होता है, सारे पाप नष्ट होते हैं। क्या उक्त बातें विज्ञान सम्मत हैं?

प्रथम गंगा स्नान तथा अस्थि प्रवाह पर विचार करते हैं। जल शरीरादि को स्वच्छ करता है, मन की मलिनता को नहीं। फिर हम यह भी देखते हैं कि किये हुए कर्म कभी समाप्त नहीं होते हैं, उनका फल अवश्य मिलता है। थोड़ा विचार करें गलती से बबूल के बीज बोये अब उस पर कितना ही गंगाजल डालें, प्रार्थना करें, विशेष अनुष्ठान करें क्या बबूल के स्थान पर आम लगेंगे, आम का वृक्ष उगेगा?यह कभी संभव नहीं है फिर नदी विशेष में स्नान करने से पाप नष्ट होते हैं, यह मान्यता तथा तीर्थादि भ्रमण से पाप नष्ट होते हैं, यह मान्यता अवैज्ञानिक है। कबीर ने लिखा है –

तीरथ चाले दोउ जना चित्त चंचल मन चोर।
एकौ पाप न उतारिया दस मन लाये और॥

कैसी आश्चर्य की बात कि सबको पवित्र करने वाली गंगा को पवित्र करने की चिन्ता तथाकथित साधुओं को हो रही है। वे साधु गंगा जल पीकर पवित्र होने का उपदेश औरों को देते हैं तथा स्वयं क्या करते हैं :-

स्वयं कुम्भादि मेलों पर बिसलरी का पानी पीते हैं। थोड़ा विचार करें मोक्ष किसे कब मिलता है – उपदेश में सभी कहते है। सत्कर्म निष्काम कर्म मोक्ष देते हैं फिर अस्थि जिसमें आत्मा नहीं है गंगादि में डालने से मोक्ष कैसे प्राप्त करेगी। सत्य तो यह है कि उक्त मान्यता अवैज्ञानिक है।

फलितज्योतिष ग्रह शान्ति शुभ-अशुभ मुहूर्त।

ज्योतिष में गणित ज्योतिष तो सृष्टि के ऋत नियमों के आधार पर होने से सत्य है। ग्रहण कब कहाँ होगा, सूर्योदय-सूर्यास्त किस दिन कब होगा आदि ज्ञान-विज्ञान सम्मत होने से सत्य है। फलित ज्योतिष अमुक राशिवाला सुखी या दुखी होगा पूर्णतया असत्य है। सुख-दुख कर्मानुसार तथा मनकी अनुकूलता तथा प्रतिकूलता पर आधारित है। ज्योतिषियों को हाथ दिखाकर भविष्य फल जानना, अमुक शुभ या अशुभ मुहूर्त है आदि बातें सारी अवैज्ञानिक हैं। राशि के ञ, ण, ढ, ठ, ङ अक्षर होते हैं इन पर कौन सार्थक नाम रखता है?जन्म पत्री कक्षा आठ-दस पास पंडित बनाता है या बहुत पढ़ा लिखा पंडित बनाता है, सब असत्य होता है – केवल रुपये कमाने के धंधे हैं। हाथ देखकर भविष्य बताने वाले ज्योतिषी पर किसी ने सत्य लिखा है –

नजूमी राह में बैठा किस्मत बताता है
दर हकीकत वह किस्तम अपनी ही बनाता है।
बजाहिर देखता है हाथ वो दुनियावालों के
जब गौर से देखा तो वह हाथ अपने ही दिखाता है॥

ग्रह जड़ हैं, इनकी शान्ति के लिए की गई प्रार्थनाएँ ये सुन सकेंगे?करोड़ों मील दूर स्थित ये ग्रह हैं, भूमि पर बैठे हुए पंडित को इनकी क्रूरता, इनकी शान्ति दिखाई देती हैं?कैसी कल्पना है, कैसा अन्धविश्वास है।

शुभ मुहूर्त, अशुभ मुहूर्त की जानकारी इन पंडितों को कुछ भी नहीं होती लेकिन फिर भी अधिकांश पढ़े-लिखे नेता-अभिनेता शुभ मुहूर्त की जानकारी प्राप्त करने के लिए जाते हैं और अपना कार्य करते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद छः सौ देशी रियासतों के पंडत लोग अपने-अपने राजाओं को न बता सके कि रियासतें समाप्त होने वाली हैं फिर भी हम अन्धविश्वास में फँसे हुए हैं।

देव सो गये हैं, कोई शुभ कार्य इन दिनों न करें, यह मान्यता भी अवैज्ञानिक है। सूर्य देवता, चन्द्रमा देवता, वायु देवता, अग्नि देवता, नक्षत्र देवता आदि अन्य अनेक देवता अपने नियम को न छोड़कर कार्य में रत हैं, फिर कौन सा देवता सो गया है। इनमें से कोई भी देवता अपने नियत कार्य को छोड़ेगा तो संसार के कार्य कैसे चलेंगे?इस पर विचार करें, अन्धविश्वास में न फंसे।

हमारे बालक के विवाह की तारीख निश्चय होने के बाद दूसरे दिन कन्या पक्ष का फोन आया – देव सो गये हैं – अतः देवों के जागने पर तीन महीने बाद विवाह हो सकेगा। हमने जब सुना तो हम तुरन्त कन्या पक्ष के घर गये। पहले उनकी उक्त बात सुनी, फिर हमने कहा कौन से देव सो गये?सूर्य-चन्द्र-वायु-आकाश-अग्नि आदि देवों में कौन सा देव सो गया है?अगर सो गया है तो अग्नि में हाथ डालें तो नहीं जलना चाहिए। सूर्य की किरणें गरम है या ठण्डी?ये नियम से उदय अस्त हो रहे हैं आदि बातें सुनकर विवाह निश्चित तिथि में करने को वे सहमत हो गये।

विवाह में पंडित गुण मिलाते हैं – वर-कन्या के सुख का योग बताते हैं – नवजात शिशु का जन्म पत्र बनाकर आयु 70-80 बताते हैं आदि। जब वर कन्या में बनती नहीं या कोई भयंकर संकट आता है तथा जन्म पत्र वाले बालक पाँच-छः वर्ष में ही मृत्यु होती है तब पंडित जी से पूछें तो यही उत्तर देंगे –

''दैव इच्छा बलीयसी'' भाग्य बलवान है, ईश्वर के नियम के आगे हमारी कहाँ चलती है। जब कर्मानुसार ईश्वरीय व्यवस्था है तो इस अवैज्ञानिक मान्यता में हम पढ़े लिखे क्यों फंसे हैं?

जड़ को चेतन समझकर व्यवहार करना अवैज्ञानिक

आज संसार में मूर्ति पूजा प्रचलित है, क्या यह वैज्ञानिक दृष्टि से ठीक है?थोड़ा इस पर विचार करें – एक उत्तम कुशल चित्रकार के पास जाकर हमने कहा हमारे बाबा का चित्र बना दें। चित्रकार बोले- उनका कोई पुरा चित्र (फोटो) आपके पास हो तो लायें बना देंगे। हमने कहा हमने उन्हें देखा भी नहीं है, न उनका कोई चित्र ही हमारे पास है। चित्रकार बोले बिना चित्र के हम उनका चित्र नहीं बना सकते। एक अच्छा चित्रकार भी बिना देखे हुए का चित्र बनाने में असमर्थ है तो वेद वर्णित – **''न तस्य प्रतिमा अस्ति''** तथा **'सपर्यगाच्छुकमकायमव्रणमस्नाविरं''** जिसको किसी ने उनकी मूर्ति न होने से देखा नहीं तथा सर्वव्यापक वह ईश्वर शरीर रहित नस नाड़ियों के बन्धन से रहित है तो उसकी मूर्ति कैसे बन सकती है?इस आधार पर मूर्तिपूजा निरर्थक है।

मूर्तिपूजा अवैज्ञानिक इसलिए भी है कि वेदों के अतिरिक्त दर्शनशास्त्रों, ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, रामायण, महाभारतादि किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में जड़ मूर्ति पूजा का विधि विधान नहीं मिलता है। शंकराचार्य, कबीर, नानक, तुकाराम आदि सन्तों ने इसे उचित नहीं माना है। सत्य तो यह है कि वह निराकार है हमने उसकी आकृति बना दी। इससे सारी व्यवस्था उलट गई – जो हमें खिलाता है – उसे हम भोग लगाने लगे, जाड़ों में रजाई उढ़ाने लगे, मेवों का प्रसाद चढ़ाने लगे, गर्मियों में एसी, कूलर की व्यवस्था करने लगे – जो ईश्वर इनको हमें प्रदान करता है – हम उसे देते हैं – मान करते हैं या अपमान?कोई निर्धन धनवान को एक पैसा दान दे तो मान या अपमान?

इसके अतिरिक्त पंडितों की कथा में यह सुनकर शिव के गण आयेंगे शत्रुओं का विनाश करेंगे इस अवैज्ञानिक अन्धविश्वास से सोमनाथ आदि मन्दिरों का विध्वंस हुआ। सुवर्णादि धन वैभाव के साथ तथाकथित पंडितों की जो हानि या दुर्दशा हुई, वह सब जानते हैं, फिर भी हम मूर्ति-पूजा के अन्धविश्वास में फंसे हुए हैं। हम भारतवासी वीर होते हुए भी इस अवैज्ञानिक जड़ मूर्ति पूजा के कारण पराधीन हुए। स्वामी दयानन्द ने सत्य ही लिखा है कि जड़ की पूजा करने से अन्तःकरण में जड़त्व का भाव आ जाता है। बुद्धि जड़ हो जाती है, सोच विचार कर कार्य करने की शक्ति समाप्त हो जाती है।

योगदर्शन के व्यास भाष्य में पूजा का अर्थ लिखा है – 'पूजनं नाम सत्कारः' अर्थात् यथोचित व्यवहार को पूजा कहते हैं। जड़ को जड़ समझकर उससे वैसा व्यवहार करना चाहिए। जो जड़ आपके द्वारा किये गये व्यवहार को न जानता है, न समझता है, न आशीर्वादादि देता है उसकी पूजा वैज्ञानिक नहीं अवैज्ञानिक है। इस अवैज्ञानिकता के कारण चेतन माता-पिता, आचार्य आदि वृद्ध जन उपेक्षित हो गये हैं। जिनको खिलाने से, जिनका यथोचित सत्कार करने से हमें आशीर्वाद मिलता है – वे आज मूर्तिपूजा के कारण उपेक्षित हो गये हैं। जो खा सकते हैं, जिन्हें भोजनादि से तृप्ति हो सकती है, उनकी ओर हमारा ध्यान नहीं। आज जो देश भर में वृद्धाश्रम बन रहे हैं, क्या यह हमारे लिए गौरव की बात है। किसी कवि का वचन है –

यं माता पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृति कर्तुं शक्या वर्ष शतैरपि॥

सामर्थ्यशाली मनुष्य के रहने पर भी जिसके माता-पिता कष्ट में रहते हैं, उसका कोई प्रायश्चित नहीं है, उसका कल्याण कभी सम्भव नहीं है। इस अन्धविश्वास जन्य अवैज्ञानिक जड़ पूजा ने – ''मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव'' आदि पुण्यप्रद भावों को समाप्त कर दिया। जिन माता-पिता आदि की कृपा से, स्नेह से, सहयोग से, समर्पण भाव से हम इतने बड़े, सामर्थ्यशाली बने हैं, उनकी उपेक्षा करने वाले उनका यथोचित सत्कार न करने वाले क्या हम ईश्वर भक्त हो सकते हैं। अतः जड़ मूर्ति की इस अवैज्ञानिक पूजा को त्यागकर जीवित चेतन माता-पिता तथा वृद्धजनों का आदर करना चाहिए।

सत्य तो यह है कि इन अवैज्ञानिक अन्धविश्वासों को त्यागकर हमें वेद मार्ग का अनुसरण करना चाहिए –

सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विराधिषि।

(अथर्व. 1-1-4)

सन्त तुलसीदास 'रामचरित मानस' में लिखते हैं –

वरनाश्रम निज-निज धरम निरत वेद-पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, न भय शोक न रोग॥

और

सब नर करहिं परस्पर प्रीति।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति रीति॥

युगों तक भारतीय जन वेद के शाश्वत सत्य वैज्ञानिक मार्ग पर चलते रहे, तब भारत ने 'विश्व गुरु' की गौरवमय संज्ञा प्राप्त की थी। मनु ने घोषणा की –

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

भारतीय श्रेष्ठ जनों से भू-मण्डल के सभी मानवों ने चरित्र की शिक्षा प्राप्त की। जब हम वेद वर्णित वैज्ञानिक सत्य मार्ग पर चलते रहे तभी 'आदर्श राम राज्य' की स्थापना कर सके थे।

वर्तमान में छल-कपट, ईर्ष्या-द्वेष, स्वार्थ वृत्ति, भोग भावना तथा संग्रह वृत्ति की भावना हमारे अन्दर व्याप्त है। साथ ही भाई-भाई का विरोध, वृद्धजनों की उपेक्षा वृत्ति, असुरक्षा का भाव यह सब अवैज्ञानिक अन्धविश्वासों की देन है। बड़े-बड़े शिक्षित व्यक्ति, पंडित समुदाय, वैज्ञानिक, शासक वर्ग भी इस अवैज्ञानिक मार्ग पर चल रहे हैं। वेद के शाश्वत् सत्य मार्ग पर चलने के लिए अन्धविश्वासों को दूर करने के लिए हमें एक बार स्वामी दयानन्द लिखित 'सत्यार्थ प्रकाश' का अध्ययन करना चाहिए।

– 5, सीताराम भवन, फाटक, आगरा कैण्ट-282001, मो.:-08909347329

आर्य समाजवाद और राष्ट्रवाद – स्वामी अग्निवेश

नव सांस्कृतिक जन आन्दोलन में उच्च स्थान रखने वाले क्रान्तदर्शी संन्यासी स्वामी अग्निवेश जी का पूरा जीवन, प्रगतिशील जीवन मूल्यों राष्ट्रीय एकता, गरीब, सताये हुए मजदूरों के लिए तथा समतामूलक समाज के निर्माण के लिए संघर्षशील रहा है। आप एक आधुनिक संन्यासी हैं इसलिए अपने क्रान्तिकारी विचारों के लिए प्रतिक्रियावादी शक्तियों के कोप भाजक भी रहे हैं। विशेष संवाददाता ने उनसे आर्य समाजवाद तथा राष्ट्रवाद के बारे में बातचीत की स्वामी जी के वह महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत हैं।

प्रश्न : आर्य समाजवाद की और सभी बातें तो बड़ी पसन्द आ रही हैं पर यह सामाजीकरण वाली बात पूरी तरह गले नहीं उतर पा रही हैं। सामाजीकरण में आज जिनके पास सम्पत्ति का अधिकार है वह समाप्त होता है। इसलिए उनका नाराज होना अवश्यम्भावी है। बहुत छोटी सम्पत्ति वाले तो बेशक सामाजीकरण का समर्थन करने लगें पर जो बड़ी-बड़ी सम्पत्ति वाले हैं, वे निश्चय ही आपका विरोध करेंगे। इसलिए क्या ही अच्छा हो कि आप सामाजीकरण के बदले राष्ट्रवाद की बात करें – देशभक्ति, प्रचण्ड देशभक्ति जब लोगों में पैदा होगी तो देश की सभी समस्याओं का समाधान होगा और उसमें किसी की सम्पत्ति छीनने की भी जरूरत नहीं पड़ेगी। समाजवाद और राष्ट्रीयकरण का नारा लगा कर लोगों को व्यर्थ में नाराज करने के बदले यदि केवल राष्ट्रभक्ति का उपदेश करें तो सभी साथ लग जायेंगे।

उत्तर : इस देश की कुछ पूंजीवादी राजनैतिक पार्टियाँ भी आपकी तरह समाजवाद की जगह राष्ट्रवाद की बातें करती हैं। उनका नारा है – हम समाजवाद नहीं, राष्ट्रवाद चाहते हैं। लेकिन हमारी यह दृढ़ मान्यता है कि समाजवाद और सम्पत्ति के सामाजीकरण के बिना राष्ट्रवाद की बात करना न केवल एक ढकोसला है बल्कि एक शरारतपूर्ण पूंजीवादी षड्यंत्र है। सम्पत्ति के सामाजीकरण के विरोध का मतलब है व्यक्तिगत स्वामित्व का समर्थन और इसका मतलब है पूंजीवादी व्यवस्था का समर्थन। पूंजीवादी व्यवस्था में देशभक्ति न तो सच्चे मायने में पनप सकती है और अंततः न ही हमें उसे पनपाने की चेष्टा करनी चाहिए।

प्रश्न : तो क्या आप नहीं चाहते कि लोगों में देशभक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी जाये?क्या आप नहीं चाहते कि हमारे वीर जवान अपने पूर्वजों से प्रेरणा लेकर भारतीय सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के लिए अपना बलिदान दें?

उत्तर : हम चाहते हैं कि लोगों में देशभक्ति की भावना काम करे पर ***देशभक्ति का यह कदापि मतलब नहीं कि चन्द पूंजीपति देश की बहुसंख्यक गरीब जनता का शोषण करके अपने महल, अटारी और तिजोरी की रक्षा के लिए इन किसान मजदूरों के बेटों को मरवा डालें। देशभक्ति का सबसे पहला सबूत तो यह होना चाहिए कि देश में बसने वाले प्रत्येक नागरिक को उन्नति के समान अवसर मिलें और देश से शोषण समाप्त हो और गरीब-अमीर का भेदभाव और मालिक-मजदूर का भेदभाव समाप्त हो। यह सब करने के लिए जरूरी है कि सबसे पहले देश के समस्त उत्पादन के साधनों का सामाजीकरण हो और सब बच्चों के लिए शिक्षा निःशुल्क हो और सबको आजीविका का मौलिक अधिकार हो। एक वाक्य में राष्ट्रवाद लाने के लिए जरूरी है कि पहले समाजवाद लाया जाये। बिना समाजवाद के राष्ट्रवाद की या भारतीय संस्कृति की रक्षा की दुहाई देना एक पूंजीवादी प्रपंच है।*** कोरे राष्ट्रवाद के पुजारी राष्ट्र के नाम पर कुछ नदी नालों और पहाड़ पत्थरों का ही गुणगान करने लगते हैं, वे भूल जाते हैं कि वास्तविक राष्ट्र तो यहाँ बसने वाली मेहनतकश जनता है जिनके हितों को ठुकरा कर राष्ट्र अधिक समय तक खड़ा नहीं रह सकता। राष्ट्रवाद निरी भावुकता का नारा न होकर यथार्थ का परिचायक होना चाहिए।

आज हमारे देश में राष्ट्रवाद और देशभक्ति की बात उस समय अधिक जोर से कही जाती है जब कोई विदेशी हमला हमारे देश पर होता है। उस समय जय जवान और जय किसान के गीत गाए जाते हैं। रेडियो भी और सिनेमा भी देशभक्ति के रंग में रंग जाते हैं। रेलवे प्लेट फार्मों पर 'बड़े घर की महिलायें' चाय के कैन्टीन खोलकर युद्ध में जा रहे जवानों को मुफ्त चाय पिलाती हैं और जवानों को मिठाई के पैकेट भेजती हैं और कुछ उनके लिए ऊनी कपड़े बुनती हैं। यह सब उसी समय तक चलता है जब तक युद्ध का खतरा बना रहता है। एक बार खतरा टलने के बाद जवान को कोई याद नहीं करता। फिर तो रेडियो के गीत भी बदल जाते हैं और स्टेशनों के कैन्टीन भी बंद हो जाते हैं। देश की रक्षा में तत्पर हमारे देश के जवान गरीब किसान और मजदूरों के बेटे हैं। मध्यवर्गीय परिवार के लड़के कप्तान मेजर आदि बनते हैं। बड़े पूंजीपति घरानों के लड़के फौज में नहीं जाते। वे तो युद्धकालीन परिस्थितियों का फायदा उठाकर एक ओर तो देशभक्ति का वातावरण पैदा करके गरीब के लड़कों को फौज में मरने के लिए भेजकर अपनी तिजोरियों की सुरक्षा कर लेते हैं और दूसरी ओर कृत्रिम अभाव की सृष्टि करके दुगना-तिगुना मुनाफा कमाते हैं। युद्ध के समय जब एक ओर किसान का बेटा लड़ाई के मैदान में मारा जाता है और बूढ़े किसान की जिन्दगी में अन्धेरा छा जाता है, घर में बैठी जवान बहू विधवा हो जाती है और उसके छोटे-छोटे बच्चे अनाथ हो जाते हैं दूसरी ओर उस समय पूंजीपति के पौ बारह होते रहते हैं। उनके घर में दिवाली मनाई जाती है और कोई उनके इस अवैध व्यापार पर ऊँगली न उठा सकें, इसके लिए वे अपने काले धन में से कुछ टुकड़े राष्ट्र रक्षा कोष में फेंककर देशभक्ति का खिताब भी लूटते रहते हैं।

राष्ट्रवाद और राष्ट्र की रक्षा के नाम पर जिस देश के लिए हजारों-लाखों नौजवान अपना सिर कटाते हैं उस देश के 90 प्रतिशत लोग इतने दीन-हीन और गरीब हैं कि उनकी झोपड़ी में एकाध टूटी चारपाई और दो-चार मिट्टी के ठीकरों के सिवाय कोई सम्पत्ति नहीं, जिसके छिन जाने का उन्हें भय हो। यह तो 10 प्रतिशत से भी कम, देश के सरमायेदारों और इजारेदारों की कोठी, कार और कारखानों की रक्षा के लिए और उनके दलाल पूंजीशाह, नौकरशाह सरकार की कुर्सी की रक्षा के लिए गरीब के जवान बेटों की बलि दी जाती है। इसीलिए तो जो पूंजीपति शान्ति के समय किसान मजदूर के गले पर छुरी चलाता है, वही पूंजीपति युद्ध के समय सीमा पर लड़ रहे जवानों को मिठाई के पैकेट्स भेजता है। शान्ति के समय जो 'मेम साहबें' दिल्ली, कलकत्ता और बम्बई के शॉपिंग सेन्टर्स में दिन-रात अपने भोग-विलास के साधन खरीदतीं रहती हैं, वे अचानक युद्ध के समय देशभक्त बनकर स्टेशनों, पर चाय पिलाने लगती हैं। और जो महिलायें शान्ति के समय अपने 'पप्पी, माई डियर पप्पी' (कुत्ते के बच्चों) के लिए स्वेटर बुनती रहती हैं, वे ही हिमालय की बर्फानी चट्टानों पर लड़ रहे सैनिकों के लिए ऊनी गलबन्द तैयार करने लगती हैं। मानों देश का यह समृद्धवर्ग युद्ध के समय अपने ऐश्वर्य साधनों को बचाने के लिए अपने आपको शत्रु के सामने न खड़ा करके गरीब के बेटों को बहला फुसला कर तथा देशभक्ति और राष्ट्रवाद की दुहाई दे-देकर मौत के मुँह में झोंक देता है और कहता है कि देखो बेटों! देर मत करो। लो, यह चाय का कप और जल्दी जाओ मैदान में और देखो, जमकर लड़ना बहादुरों! हँसते-हँसते सीने पर गोली खा लेना पर पीठ न दिखाना। तुम्हारे शहीद हो जाने से तुम्हारा परिवार बेशक उजड़ जाये पर हमारे काकटेल पार्टियों और डिनरों में खलल नहीं पड़नी चाहिए।

बिना समाजवाद और सामाजीकरण के जो राष्ट्रवाद पनपाया जाता है उसकी यह घिनौनी तस्वीर है। हमें ऐसा राष्ट्रवाद नहीं चाहिए। इस पूंजीवादी ढांचे में फौज का सिपाही भी किसी राष्ट्रवाद से प्रेरित होकर नहीं लड़ता, वह अपनी गरीबी और भूख का मारा सेना में रोजगार की दृष्टि से जा फँसता है और उसके बाद उसे जबरदस्ती लड़ना पड़ता है। ***सच्चा राष्ट्रवाद तो इस देश में तभी पैदा होगा जब यह देश मुट्ठीभर विदेशी साम्राज्यवादियों और देशी पूंजीवादियों के चंगुल से छूट जायेगा। जब इस देश का सारा धन और इस देश की सारी धरती इस देश में बसने और मेहनत करने वाले सभी किसान मजदूर, सभी श्रमजीवी और बुद्धिजीवी लोगों की समानरूप से होगी और जब इस देश के शासन से पूंजीपतियों और साम्राज्यवादियों के दलाल दरिन्दों को समाप्त कर जनता के सही प्रतिनिधियों का शासन तन्त्र स्थापित होगा, तभी इस देश का प्रत्येक किसान और सभी जवान बड़े गर्व के साथ यह कह सकेगा कि '''यह देश मेरा अपना है, इसके खेत और इसके कारखाने मेरे अपने हैं इसकी संस्कृति और इसका शासन मेरा अपना है और इसीलिए मैं अपने इस देश को, इस राष्ट्र को इतना प्यार करता हूँ कि इसकी रक्षा के लिए मैं सहर्ष अपना तन-मन-धन न्यौछावर कर सकता हूँ।'' यह सच्ची देशभक्ति है और यही सच्चा राष्ट्रवाद है।***

देशभक्ति का यह कदापि मतलब नहीं कि चन्द पूंजीपति देश की बहुसंख्यक गरीब जनता का शोषण करके अपने महल, अटारी और तिजोरी की रक्षा के लिए इन किसान मजदूरों के बेटों को मरवा डालें। देशभक्ति का सबसे पहला सबूत तो यह होना चाहिए कि देश में बसने वाले प्रत्येक नागरिक को उन्नति के समान अवसर मिलें और देश से शोषण समाप्त हो और गरीब-अमीर का भेदभाव और मालिक-मजदूर का भेदभाव समाप्त हो। यह सब करने के लिए जरूरी है कि सबसे पहले देश के समस्त उत्पादन के साधनों का सामाजीकरण हो और सब बच्चों के लिए शिक्षा निःशुल्क हो और सबको आजीविका का मौलिक अधिकार हो। एक वाक्य में राष्ट्रवाद लाने के लिए जरूरी है कि पहले समाजवाद लाया जाये। बिना समाजवाद के राष्ट्रवाद की या भारतीय संस्कृति की रक्षा की दुहाई देना एक पूंजीवादी प्रपंच है।

प्रश्न : आपकी उपरोक्त बातें ठीक भी हों तो वेदानुकूल नहीं हैं क्योंकि वेद में तो राष्ट्रवन्दना के मंत्र भरे पड़े हैं और मातृभूमि की आराधना एक पुण्य कार्य बताया गया है। देशभक्ति तो समाजवाद और पूंजीवाद के झगड़ों से ऊपर की चीज है। यह एक ऐसी दिव्य भावना है जिसमें स्वार्थ की गन्ध नहीं आनी चाहिए। वेद को पढ़ने से तो हमें अनायास ही इस देश से, अपनी गौरवमयी भारतमाता से प्यार होता है और चाहे हम गरीब हों या अमीर, वेद हमें अपनी मातृभूमि के प्रति देशभक्ति का आदेश देता है।

उत्तर : सबसे पहले तो आपका यह भ्रम दूर होना चाहिए कि वेद केवल भारतवासियों को ही देशभक्ति का उपदेश दे रहा है। वेद सार्वभौम है और उनकी दृष्टि में सारी सृष्टि सर्वथा एक समान है। जो व्यक्ति भावुकता में बहकर वैदिक ऋचाओं में भारतमाता की वन्दना ढूँढ़ते हैं और अपनी भावनाओं को वेदमंत्रों पर आरोपित करते हैं, वे वेद के साथ सरासर अन्याय करते हैं, दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि वेद मातृभूमि की अराधना सिखाता है- ऐसी भूमि की आराधना जो एक सच्चे माँ की तरह अपने सभी पुत्रों को समानरूप से प्यार करती और सबको उन्नति के समान अवसर प्रदान करती है। पर जो 'माँ' अपने 95 प्रतिशत बेटों को भूखा और नंगा रखकर उनके शोषण के द्वारा 5 प्रतिशत बेटों को खिलाती-पिलाती है वह माँ नहीं, डायन है, चुड़ैल है। वेद हमें मातृभूमि की उपासना सिखाता है – डायन भूमि, और चुड़ैल भूमि की उपासना नहीं सिखाता। तीसरी बात ध्यान देने की यह है कि वेद में मातृभूमि की उपासना केवल अपनी मातृभूमि तक नहीं रूक जाती। उसमें संकुचित और संकीर्ण राष्ट्रवाद जैसा कि हिटलर या मुसोलिनी ने पैदा किया था, की उपासना करना नहीं लिखा। वेद की मातृभूमि उपासना, भूमिमाता की उपासना तक की जाती है और उस अर्थ में यह सारी धरती एक घर और सारी मानवता एक कुटुम्ब, एक परिवार के रूप में उपास्य होती है। वेद भारतीय कुटुम्बकम् या नैपाल कुटुम्बकम् की बात नहीं करता। वेद तो **वसुधैव कुटुम्बकम्** की आराधना सिखाता है और अथर्ववेद का पृथिवी सूक्त तो संकीर्ण राष्ट्रवाद पर जबरदस्त चोट करता हुआ कहता है **माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः** यह भूमि मेरी माता है और मैं पृथिवी का पुत्र हूँ। संकीर्ण राष्ट्रवाद का दृष्टिकोण साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद को जन्म देता है जो कि शोषण और अन्याय का बड़ा ही घृणित स्वरूप है।

इस तरह हम देखते हैं कि आर्य समाजवादी व्यवस्था में संकीर्ण राष्ट्रवाद का तो जरा भी स्थान नहीं है और उदात्त राष्ट्रवाद भी समाजवाद का विकल्प बनकर नहीं, वरन् पूरक बनकर प्रतिष्ठित होता है।

सर्वश्रेष्ठ शिक्षा पद्धति गुरुकुल प्रणाली है – सुखदेव व्यास

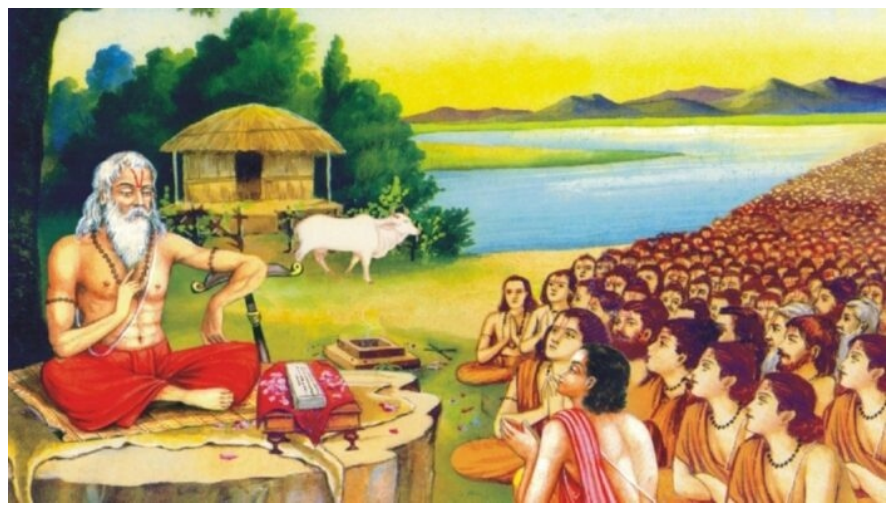

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति एक पूर्ण शिक्षा व्यवस्था है, गुरुकुल शिक्षा पद्धति से अगर शिक्षा दी जाती है तो 24 वर्ष में ही शिक्षित युवा तैयार हो जाता है। प्राचीन युग में प्रत्येक गाँव में गुरुकुल हुआ करते थे, उसमें स्थानीय भाषा या संस्कृत में शिक्षा दी जाती थी। अंग्रेजों ने भारतीय शिक्षा प्रणाली को ध्वस्त कर अपने स्वार्थ के लिये अपनी अविकसित शिक्षा पद्धति लागू कर दी और यह कहते हैं कि भारतीयों के पास कोई शिक्षा पद्धति नहीं थी, अंग्रेजों के कारण ही भारतवासी शिक्षित हुए हैं। इसके विपरीत अंग्रेजों ने हमारी विकसित शिक्षा व्यवस्था को ध्वस्त कर अपनी प्रणाली लागू की।

सन् 1931 ई. में गोलमेज सम्मेलन में महात्मा गाँधी लंदन गये थे। उस समय अंग्रेज अधिकारियों ने गाँधी जी से कहा था– यदि अंग्रेज भारत नहीं आते तो भारत की शिक्षा व्यवस्था बन नहीं पाती। गाँधीजी को यह बात सही नहीं लगी लेकिन उनके पास ऐसे तथ्य नहीं थे कि वे उसका जवाब देते। भारत आने पर उस समय के विख्यात इतिहासकार धर्मपाल जी से कहा था कि तुम भारत की शिक्षा व्यवस्था के बारे में प्रमाण एकत्रित करो और उसके आधार पर बताओ कि भारत की शिक्षा व्यवस्था अंग्रेजों के आने के पूर्व कैसी थी?

गाँधी जी के कहने पर इतिहासकार धर्मपाल जी लंदन, फ्रान्स और जर्मनी आदि देशों और भारत में प्राचीन इतिहास की खोज करने में संलग्न हो गये और वे 40 वर्ष तक अध्ययन और अध्यापन करते रहे तथा अनेक दस्तावेज एकत्रित किये, उसका उन्होंने पूर्ण विश्लेषण किया और यह सिद्ध कर दिखाया कि– अंग्रेजों के आने से पूर्व भारत की शिक्षा व्यवस्था अत्यन्त ही श्रेष्ठ थी। भारत के प्रत्येक परिवार में शत प्रतिशत साक्षरता थी और भारतीय जन अपने बच्चों को शिक्षित करने में अपना तन–मन–धन खर्च करते थे।

विलियम एडम मैकाले के गुरु थे, मैकाले भारत की शिक्षा पद्धति के विषय में जो खोज करते थे, उसे वे अपने गुरु विलियम एडम के पास भेजते थे। उसे आधार बनाकर विलिम एडम ने भारत की शिक्षा पद्धति और व्यवस्था पर 1780 पृष्ठों की रिपोर्ट तैयार की उस रिपोर्ट को ब्रिटिश संसद में पेश किया गया। 2 फरवरी सन् 1835 को ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में मैकाले ने भारतीय शिक्षा पद्धति और व्यवस्था पर भाषण दिया और सांसदों ने उनसे प्रश्न भी किये। उनका उत्तर भी मैकाले द्वारा दिया गया। ये सभी रिकार्ड रूप में अभी तक सुरक्षित है। मैकाले ने कहा था :–

1. मैंने पूरा भारत देखा, लेकिन भारत देश में किसी भी स्थान पर भिखारी देखने को नहीं मिला, भारत इतना समृद्ध है।

2. सूरत शहर में जितनी सम्पत्ति है, उतनी यूरोप में सभी शहरों की सम्पत्ति भी नहीं है अर्थात् भारत का शहरी इलाका व्यापार धंधों में इतना समृद्ध था कि यहाँ किसी प्रकार की बेरोजगारी नहीं थी।

3. भारत में जितना भी धन वैभव सम्पत्ति है, वह भारत की शिक्षा व्यवस्था के कारण है। जिसका तात्पर्य है शिक्षा रोजगार परक और योग्यता पर आधारित होने के कारण यह समृद्धि थी।

4. भारत में लगभग शत प्रतिशत साक्षरता है। दक्षिण भारत में साक्षरता १०० प्रतिशत है। दक्षिण भारत अर्थात् कर्नाटक, तेलंगाना, तमिलनाडु शत प्रतिशत, उत्तर भारत में लगभग 82 प्रतिशत, मध्यभारत में 87 प्रतिशत साक्षरता है। मैं कह सकता हूँ सम्पूर्ण भारत साक्षर है अर्थात् यहाँ पर कोई अनपढ़ नहीं।

5. भारत में 7 लाख 32 हजार गाँव हैं जहाँ से रेवेन्यू प्राप्त होता है और कोई भी गाँव ऐसा नहीं है जहाँ गुरुकुल या स्कूल न हो। यहाँ स्कूलों को गुरुकुल कहा जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि इन गुरुकुलों में पढ़ाने वाले ब्राह्मण विद्वान् और गुरु की योग्यता वाले थे।

6. गुरुकुलों में 200 से 20000 हजार तक छात्र पढ़ते हैं, जिसमें मोनिटोरियम शिक्षण पद्धति है, यही कारण है यहाँ से निकलने वाला छात्र सब विषयों में पारंगत होता था।

7. गुरुकुलों में विद्या और शिक्षा दोनों प्रदान की जाती है। नैतिकता, आध्यात्मिकता, न्याय आदि को सिखाना विद्या है, गणित, रसायन शास्त्र, विज्ञान आदि को सिखाना शिक्षा है। इससे यही लगता है मैकाले ने यहाँ की शिक्षा व्यवस्था का पूर्ण अध्ययन किया था।

8. गुरुकुलों में 8 विषयों गणित, खगोलशास्त्र, धातु विज्ञान, इंजीनियरिंग, संगीत, रसायन शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र, भौतिक शास्त्र पढ़ाये जाते हैं। एक विषय पूर्ण होने पर दूसरा विषय पढ़ाया जाता है, इससे यह सिद्ध होता है कि गुरुकुल से निकलने वाला छात्र विद्वान् होकर ही निकलता है।

9. भारत में विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा होती थी। ऐसे गुरुकुलों की संख्या 15800 सन् 1835 तक थी।

ब्रिटेन के तत्कालीन शिक्षा मंत्री ने मैक्समूलर की रिपोर्ट के बाद स्वीकार किया कि भारत पूर्ण शिक्षित देश है। भारत में तब 7 लाख 32 हजार से भी अधिक स्कूल थे इसके विपरीत ब्रिटेन में मात्र 240 स्कूल थे।

गाँवों के गुरुकुलों के साथ ही लड़कियों को पढ़ाने के लिए अलग गुरुकुल थे। सह शिक्षा का चलन नहीं था। लड़कियों के स्कूल में लड़कियाँ, महिलायें ही शिक्षा देती थीं। गुरुकुल भी लड़के–लड़कियों के दूरस्थ रहते थे। जहाँ पर पुरुषों के जाने पर प्रतिबन्ध रहता था और लड़कों के गुरुकुलों में महिलायें प्रतिबन्धित रहती थीं। मैकाले ने ब्रिटिश संसद में कहा था कि भारत को यदि गुलाम बनाना है तो उसकी शिक्षा पद्धति को ध्वस्त किया जावे। इसी आधार पर ब्रिटिश सरकार ने भारतीय शिक्षा अधिनियम द्वारा स्थानीय भाषा और संस्कृत में शिक्षा देने को गैरकानूनी तथा अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा पद्धति लागू कर दी।

अब हमारा देश स्वतंत्र है और 70 साल से अधिक हो चुके हैं। फिर भी हम अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा दे रहे हैं। हम भारत की स्थानीय भाषा और संस्कृत में शिक्षा देने के बजाय अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देकर देश में बेरोजगारी में वृद्धि कर रहे हैं। भारतीय शिक्षा व्यवस्था अत्यन्त ही समृद्ध थी और देश में 100 प्रतिशत साक्षरता थी। यह हमारा दुर्भाग्य था कि 100 प्रतिशत साक्षरता देश की थी उसे 17 प्रतिशत साक्षर अंग्रेज ध्वस्त कर चले गये। जब हमारे देश में भारतीय भाषाओं में शिक्षा देने की व्यवस्था थी तब हमारा देश विकसित था और आज हमारा देश शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ कर विकासशील देश की श्रेणी में ही चल रहा है, आज आवश्यकता इस बात की है कि हमारे देश की जनता पुनः प्राचीन शिक्षा पद्धति की ओर लौटे और अपने स्तर पर 7 लाख 32 हजार गाँवों में अपने–अपने गुरुकुल चलाने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर देश के विकास में अपना योगदान देवे।

– अनन्त सुन्दरम् भवन,
जहाज गली उज्जैन (म.प्र.)

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रकाशित

'दैनिक यज्ञ पद्धति'

आर्यजनों की भारी माँग पर आर्य समाजों के साप्ताहिक सत्संगों तथा विशिष्ट बृहद्यज्ञों की सामान्य यज्ञ पद्धति (महर्षि दयानन्द जी द्वारा प्रणीत पंच महायज्ञ सहित) इस पुस्तक में समाहित की गई है। इसके अतिरिक्त विशेष मन्त्र, विशेष प्रार्थनाएँ तथा भजन संग्रह का भी समावेश इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक में किया गया है। यज्ञ की यह पुस्तक अत्यन्त आकर्षक तथा सुन्दर टाईटल के साथ बढ़िया कागज के ऊपर छपकर तैयार है। 50 पृष्ठों तथा 23X36 के 16वें साईज की इस पुस्तक का मूल्य 18/ रुपये रखा गया है। लेकिन 100 पुस्तक लेने पर मात्र 1000/– रुपये में उपलब्ध कराई जा रही है। डाक व्यय अतिरिक्त देय होगा।

प्राप्ति स्थान – सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
''महर्षि दयानन्द भवन'' 3/5 आसफ अली रोड, नई दिल्ली–2
दूरभाष :–011–23274771, 011–42415359
मो.:–9868211979

आओ! वेद की ज्योति घर-घर में जलाएं

- डॉ. सत्यपाल सिंह

विश्व के इतिहास में वेद प्राचीनतम पुस्तक है तथा भारतीय संस्कृति के अनुसार वेद अपौरुषेय तथा ईश्वरीय ज्ञान है। शब्द नित्य है इसीलिए इसे अक्षरों से बना मानते हैं अक्षर का अर्थ है जिसका नाश न हो। आधुनिक विज्ञान के हिसाब से ऊर्जा का नाश नहीं होता उसका सिर्फ रूपान्तर होता रहता है। ज्ञान भी इस तरह से एक ऊर्जा है। इस ज्ञान का मूल स्रोत ईश्वर है। उदाहरणार्थ, हमने पढ़ना लिखना किसी गुरुसे सीखा, हमारे गुरु ने अपने गुरुसे .... इस प्रकार पीछे जाते हुए जब दुनियां में धरती पर प्रथम मानव ने जन्म लिया तो उसका गुरु तब केवल ईश्वर ही हो सकता है। योग दर्शनकार कहता हैः-

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। (1/26)

अर्थात ईश्वर काल की मर्यादा से परे मानव का सर्वप्रथम गुरु है। ईश्वर को ज्ञान देने के लिए बोलने की अथवा आने जाने की जरूरत नहीं है- वह तो हृदय में ज्ञान का प्रकाश देता है। अलग-अलग चारों वेदों का चार ऋषियों (अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा) की आत्माओं में एक साथ ही प्रकटन हुआ।

वेद का ज्ञान सार्वकालिक, सार्वभौमिक, वैज्ञानिक तथा कल्याणकारक है। वेदों में किसी ऐतिहासिक देश, जाति, धर्म, जगह तथा नाम का वर्णन नहीं है। उस पर मानव मात्र का बराबर का अधिकार है। वेद संसार की सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। मनु भगवान उसे 'सर्व ज्ञान मयो हि स'' (1/126) अर्थात् सब प्रकार के ज्ञान से पूर्ण मानते हैं। अथर्ववेद घोषणा करता है- यस्मिन वेदा निहिता विश्वरूपाः (4/35/6)- अर्थात् विश्व का रूप वेद में निहित है और इसलिए प्राचीन काल से ही वेदों का पढ़ना-पढ़ाना व सुनना-सुनाना आर्य संस्कृति का एक अभिन्न अंग रहा है। वेद विहित कर्मों को ही आर्यों ने धर्म का नाम दिया था।

'आर्य' शब्द का अर्थ श्रेष्ठ है, ज्ञानवान है। 'आर्य ईश्वर-पुत्र' अर्थात् ईश्वर के पुत्र को आर्य कहा गया है। इस देश में अंग्रेजों के आने से पहले 'आर्य' शब्द कहीं भी किसी जाति अथवा नस्ल के लिए प्रयोग नहीं हुआ। यह तो विदेशी इतिहासकारों तथा उनके देशी चाटुकारों के राजनैतिक तथा सांस्कृतिक षड्यन्त्र के कारण हुआ। बौद्धों का आर्य सत्य किसी जाति का सत्य नहीं अपितु मनुष्य मात्र का श्रेष्ठ सत्य है। इसी प्रकार 'आर्य' संबोधन किसी जाति के लिए न होकर आदर के लिए प्रयोग होता था। रामायण तथा महाभारत के जमाने में आर्यपुत्र तथा आर्यपुत्री का प्रयोग सामान्य था। कवि कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में शकुन्तला दुष्यंत को 'आर्यपुत्र' कहती है, आर्य का व्यवहार श्वसुर के लिए तथा 'आर्या' का सास के लिए आदर के लिए होता था। जब दुष्यंत शकुन्तला को पहचानने से इंकार कर देता है तो शकुन्तला उसी दुष्यंत को 'अनार्य' कहती है। यदि दुष्यंत आर्य नस्ल का होता तो क्या व्यक्ति एक ही वर्ष के अन्दर अपनी नस्ल बदल सकता है?

ऋग्वेद ने तो ईश्वरीय घोषणा की है- 'अहम् भूमिमददाम् आर्याय' (4/26/2)। अर्थात् भगवान ने तो यह धरती आर्यों के लिए ही दी है। इसलिए तो वैदिक संस्कृति बार-बार पर उद्घोष करती रहीः-

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्ः। (ऋ. 9/63/5)

अर्थात् इन्द्र (देवत्व) को बढ़ाने के लिए राक्षसों का, दुष्टों का संहार करो तथा सारे विश्व को आर्य बनाओ।

जब से हम लोग अपने को आर्य कहना भूल गए, हमारा अपने ही वेद, शास्त्र, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण, गीता आदि संस्कृति साहित्य से नाता ही टूट गया। इन किसी भी पुस्तक में भारत देश के लोगों ने अपने को हिन्दू नहीं कहा। सब जगह हम अपने को आर्य कहकर गौरवान्वित होते रहे। अगर हमारा नाम आर्य है, तो हमें श्रेष्ठ बनना ही होगा। अनार्यत्व (अनाड़ीपन, अज्ञानता) को लात मारनी ही होगी। हमें दुष्टों, दैत्यों, राक्षसों व रावणों का हनन करना ही होगा। जब से इस देश के लोगों ने विदेशियों के कारण अथवा अपनी गलती के कारण अपने को बेचारा हिन्दु बना लिया, हमारी वीरता और वैभव खत्म हो गए। पिछले लगभग डेढ़ हजार वर्षों का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब से आर्यावर्त हिन्दुस्तान बन गया, हिन्दुओं का देश बन गया इस पर विदेशी जातियों के आक्रमण पर आक्रमण हाने लगे। इस देश की संपत्ति को लूटा गया, विशाल व दुर्लभ साहित्य को जलाया गया और धीरे-धीरे यह देश विदेशियों का जिसको हमारे प्राचीन साहित्य ने म्लेच्छ कहा था- गुलाम बन गया।

जिस भगवत गीता के अमृतमय उपेदश ने किंकर्त्तव्य विभूत मोहग्रस्त अर्जुन को युद्ध करने के लिए खड़ा किया गया था- उस गीता के करोड़ों भक्त पिछले एक डेढ़ हजार वर्षों में कायर, कमजोर, दीन हीन, नपुंसक बन करके अपनी जिन्दगी गुजारते रहे। हमारे सारे देवी-देवताओं के हाथों में कोई न कोई शस्त्र है पर उनकी प्रतिदिन की पूजा भी हमें अन्याय का विरोध करने की प्रेरणा न दे सकी। जो पौधा अपने मूल से उखड़ जाता है उसे वरूण देव का वर्षा जल, सूर्य भगवान का ताप तथा मन्द शीतल समीर भी तो जीवित नहीं रख सकता। आर्य हमारा नाम था, वेद हमारा धर्म था.... उससे दूर जाकर हमारा यह हाल होना ही था। अभी भी समय है कि हम अपने को फिर से आर्य कहकर पुनः गौरवान्वित हो।

मानव जीवन की सारी विद्याएं व विधाए वेदों के अन्दर बीज रूप से विद्यमान हैं। मनुष्य जीवन के चारों पुरुषार्थों- धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का ज्ञान तथा उन्हें प्राप्त करने का मार्ग वेद ने बताया है। अध्यात्म का अर्थ मोक्ष की प्राप्ति नहीं है- मोक्ष भी अध्यात्म का एक भाग है। अध्यात्म तो एक मार्ग है जहां हम अपने को जान पाते हैं, या जान सकते हैं। अध्यात्म आत्म तत्व के साक्षात्कार का, देवत्व प्राप्ति का महामार्ग है। हम कौन है, कहां से आए हैं, कहां जाना है आदि प्रश्नों का उत्तर अध्यात्म का विषय है। वेद कहता हैः

ओ३म् कोऽसि, कतमोऽसि, कस्यासि, को नामऽसि। (यजु. 7/29)

अर्थात् तू कौन है, मैं कौन हूँ? तू कौन सा है, मैं कौन सा हूँ? तू किसका है, मैं किसका हूँ? तू क्या नाम या शक्ति वाला है, मैं क्या सामर्थ्य वाला हूँ? वेद अपनी आत्मा को जानने की बात करता है। वेद का अध्यात्म वनों तथा पर्वतीय कन्दराओं का अध्यात्म नहीं है। वैदिक अध्यात्म मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष की बात करता है। इसीलिए मैं उसे सांसारिक अध्यात्म कहता हूँ। उदाहरण के लिए हम वेद भगवान से प्रार्थना करते हैं-

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।

आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।

मह्यम् दत्वा ब्रजत ब्रह्मलोकम्।। (अथर्व 19/71/1)

अर्थात्, हे संस्कारित लोगों को पवित्र करने वाली वेद माता मुझे वर दो ताकि मैं लम्बी आयु, बल, (प्राण शक्ति), उत्तम संतान-पशु आदि, यश, धन, ब्रह्म (वेद) ज्ञान पाकर ब्रह्मलोक (मोक्ष-प्राप्ति) का अधिकारी बन सकूँ। वेद के एक-एक पद में, एक-एक शब्द में, एक-एक अक्षर में, उनके क्रमों में बड़ा विज्ञान निहित है। शास्त्र ने घोषणा की बुद्धिर्पूवाः वाक्य कृत्तिर्वेदाः।' अर्थात् वेद का प्रत्येक वाक्य बुद्धिपूर्वक है। मनु महाराज तो वेदों को परम प्रमाण मानकर कहते हैंः-

धर्म जिज्ञासमानाम प्रमाणं परमं श्रुति। (1/132)

अर्थात् धर्म के जिज्ञासुओं के लिए इस विश्व में सबसे बड़ा प्रमाण परम श्रुति (वेद) है। मनु भगवान यह भी कहते हैं कि -

यस्तर्केण अनुसंधते सः धर्मम् वेदनेतर।

अर्थात् जो तक से अनुसंधान करता है वह ही धर्म के गूढ़ तत्व को जान सकता है।

अथर्ववेद इसलिए कह रहा है कि हे परम देव मुझे पहले दीर्घ आयु दे फिर स्वस्थ-सुन्दर मन, बुद्धि और इन्द्रियां दे। गृहस्थ आश्रम में मुझे उत्तम संतान मिले गौ, घोड़े आदि पशुओं का सान्निध्य हो। इस व्यक्तिगत व पारिवारिक सुख शांति के बाद मुझे चारों दिशाओं में यश कीर्ति मिले। कीर्ति के बाद मुझे धन की भी कोई कमी न रहे। कीर्ति और वैभव के पश्चात् मुझे (आता) ज्ञान मिले ताकि मैं बाद में ब्रह्मलोक का अधिकारी बन सकूं। वेद का उपदेश स्पष्ट है कि जो लोग धन के लिए अपने स्वास्थ्य, परिवार तथा कीर्ति को दांव पर लगाते हैं या उनकी उपेक्षा करते हैं, उन्हें बाद में पश्चाताप करना पड़ता है। धन (की अधिकता) ने कभी किसी को तृप्त नहीं किया। आत्म ज्ञान के लिए व्यक्ति को पहली सीढ़ियों से गुजरना है। यही बात तो यजुर्वेद के महामृत्युञ्जय मंत्र में और भी स्पष्ट रूप से कही गयी है-

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।

उर्वारूकमिव बन्धनात्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात।। (यजु. 3/60)

अर्थात् हे सारे संसार को सुगन्ध व पुष्टि देने वाले प्रभु! मुझे खरबुजे की तरह बन्धन से, मृत्यु से छुड़ा कर अमृत को पान कराओ। खरबुजा तभी बन्धन से छुटता है जब वह पक जाता है और पकने के लिए उसे बेल से जुड़ना ही पड़ता है, वृद्धि व मिठास के लिए उससे रस लेना पड़ता है। ठीक इसी तरह से व्यक्ति को अपने विकास, मिठास तथा परिपक्वता के लिए सांसारिक बन्धनों से बचना आवश्यक है। नहीं तो विकास, मिठास व पूर्णता में कहीं कमी रह ही जायेगी। बिना इनके आत्म ज्ञान कैसे होगा और कैसे होगी मुक्ति की प्राप्ति?

योग शास्त्र में भगवान पतञ्जलि ने योग के लिए, आत्मज्ञान के लिए, अध्यात्म की उच्चता के लिए आठ अंगों का पालन आवश्यक बताया। बिना पांच यमों (सामाजिक अनुशासन) व पांच नियमों (व्यक्तिगत अनुशासन) के कोई भी व्यक्ति अध्यात्म की सीढ़ी पर नहीं चढ़ सकता। पूरा योग ही एक अनुशासन का नाम है। शासनदूसरों पर होता है पर अनुशासन का अर्थ अपने ऊपर-अपने मन व इन्द्रियों के ऊपर-शासन का नाम है।आज तो योग व अध्यात्म के नाम पर हजारों लोग योग शिक्षक बनकर अध्यात्म मार्ग का वस्तुतः उपहास कर रहे हैं। बिना यम नियमों के खान पान के नियन्त्रण के बिना भी आज के लोग मेडिटेशन (ध्यान कहना तो गलत ही होगा) , करके चन्द दिनों में विभिन्न प्रकार का प्रकाश देखने का आत्म ढोंग करते हैं।

ऋग्वेद भी प्रेरणा दे रहा है 'मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्' (10/53/6) अर्थात् मनुष्य बनो और देवताओं को पैदा करो। इंसानियत व देवत्व की प्राप्ति के लिए हमें प्रकाश (ज्ञान) के पीछे चलना होगा। रोशनी के रास्ते की रक्षा कर उसे आगे बढ़ाना होगा और यह सब दुनियां के ताने-बाने बुनते हुए, त्यागपूर्वक भोग करते हुए ज्ञान की मशाल हाथ में लेकर अज्ञान, अन्याय व अभाव के अंधकार को चीरना होगा। तभी हम आत्मज्ञान के अधिकारी बनेंगे और तभी अध्यात्म के दिव्य रस का पान हम कर सकेंगे।

मित्रों! यह देश आत्मज्ञान व आध्यात्मिक कारण से दुनियां का कभी सिरमौर था। यह तभी तक रहा जब तक वेद का दीपक घर-घर में जलता रहा। अपनी शांति के लिए, अपने बच्चों की समृद्धि के लिए, अपने देश की प्रगति के लिए आओ आज पुनः हम वेद की ज्योति घर-घर में पहुंचायें। जिस दिन वेद का अध्यात्म संसार में फैलेगा, तब लोगों के हृदयों से वैर, वैमनस्य दूर होकर तथा आतंकवाद और अपराध खत्म होकर विश्व एक कुटुम्ब बन पायेगा। एक नीड़ बन जायेगा। भवत्येक नीड़म्।

The five homely gods

- Neela Sood

The special feature of Hindu scriptures is that various scholars and men of wisdom have interpreted them in different ways. This applies also to the 'five gods' which find references in our scriptures. Maharishi Dayanand Saraswati, the founder of Arya Samaj, believed that these 'five gods' are the real 'living gods'.

The first living god is the mother. It is the duty of the sons and daughters to serve this goddess with all their heart and soul and keep her happy. Let she not be treated harshly ever, whatever the circumstances. The second god is the father. He should also be served all through his life.

The third god is the teacher who bestows knowledge upon his pupils. He should be revered and given respect. The fourth god is the altruistic teacher of humanity who is learned, deeply religious, upright, well-wisher of all and goes from place to place preaching the truth; there by freeing people from ignorance. The fifth god is the husband for his wife and the wife for her husband.

Accepting these five living gods can make home truly a temple of worship. But who is the supreme amongst these five? Swami Dayanand Saraswati opined that without any doubt it was the mother since she was the only one who could go to the extent of annihilating herself to give a new lease of life to her child.

Yes, he is hundred percent right. The way she responds to the problems of her children is different from the way all others respond as illustrated by this small anecdote.

On one wet day when the school- going girl returned home drenched, the father asked, "Why didn't you carry an umbrella?" The brother said, "You will learn only when cold and fever would catch you". The elder sister said, "You could have waited for the rain to stop." But it was the mother who came running with a towel and set of clothes and sighed, "Only if the rain had waited for some time, my daughter would have reached home safe."

- Hindustan Times, New Delhi, **से साभार**

पितर पक्ष का वैदिक पक्ष

– सोम प्रकाश

आर्यजन देवों, ऋषियों एवं पितरों के चरित्र से प्रेरित होकर अपने दैनिक व्यवहारों को पूर्ण करते हुए सन्तति को ही नहीं अपितु मानव मात्र को भी सन्मार्ग के पथिक बनने की प्रेरणा देते हुए समाज में आदर्श उपस्थित किया करते हैं। प्राच्य ऋषियों ने परमपिता परमात्मा का वैदिक ज्ञान जन साधारण तक पहुंचाया। उसी ऋषि परम्परा में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने समाधिस्थ होकर ईश्वर साक्षात्कार करते हुए वेदज्ञान गंगा को अविरल रूप से प्रवाहित होते रहने के उद्देश्य से जीवन समर्पित कर दिया। उन्होंने यज्ञीय जीवन हेतु सभी के उपयोगार्थ अनेक ग्रन्थों की रचना करके सत्यार्थ को प्रकाशित किया। यज्ञो वै श्रेष्ठतम कर्म। यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ कर्म कहा जाता है। पांच यज्ञ दैनिक करने का विधान शास्त्रों में है। सभी आर्यजन ब्रह्म यज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथि यज्ञ और बलिवैश्व देव यज्ञ से परिचित हैं।

पञ्च यज्ञों के सम्बन्ध में महर्षि मनु का कहना हैः-

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भोतौ नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।।
(मनुस्मृति 3/70)

अर्थात् पढ़ना-पढ़ाना सन्ध्योपासना करना ब्रह्मयज्ञ है और ऋषि, देव, माता पिता आदि पितरों की सेवा सुश्रूषा तथा भोजनादि से तृप्ति करना पितृयज्ञ है। प्रातः सायं होम अर्थात् हवन करना देव यज्ञ है। मनुष्येतर प्राणियों अर्थात् कीटों, पक्षियों, कुत्तों तथा कुष्ठ व्यक्तियों, भृत्यों आदि आश्रितों के लिए भोजन देना भूतयज्ञ या बलिवैश्व देव यज्ञ कहलाता है अतिथियों को भोजन देना और सेवा द्वारा सत्कार करना अतिथि यज्ञ या नृयज्ञ कहलाता है।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' तथा 'पञ्च महायज्ञ विधि' में उपर्युक्त पञ्च यज्ञों के सम्बन्ध में विषद व्याख्या प्रस्तुत की है पितृ यज्ञ के दो भेद हैं- एक तर्पण और दूसरा श्राद्ध। जिस कर्म से विद्वान रूप देव, ऋषि और पितरों को सुखयुक्त करते हैं उसे 'तर्पण' कहते हैं। उसी प्रकार उन व्यक्तियों की श्रद्धा से सेवा करना 'श्राद्ध' कहलाता है। महर्षि के अनुसार ''तर्पण आदि कर्म विद्यमान अर्थात् जो प्रत्यक्ष हैं, उन्हीं में घटता है मृतकों मेंनहीं क्योंकि उनकी प्राप्ति और उनका प्रत्यक्ष होना असम्भव है। इसी से उनकी सेवा भी किसी प्रकार से नहीं हो सकती किन्तु जो उनका नाम लेकर देवे वह पदार्थ उनको कभी नहीं मिल सकता। इसलिए मृतकों को सुख पहुंचाना असम्भव है। इसी कारण विद्यमानों के अभिप्राय से तर्पण और श्राद्ध वेद में कहा है। सेवा करने योग्य और सेवक अर्थात् सेवा करने वाले इनके प्रत्यक्ष होने पर यह सब काम हो सकता है।'' तर्पण श्राद्ध आदि कर्म में सत्कार करने योग्य तीन हैं यथा देव, ऋषि और पितर।

शतपथ के अनुसार विद्वांसो हि देवाः अर्थात् सत्यधारी विद्वान ही देव कहलाते हैं। दो लक्षणों के पाये जाने से मनुष्यों की दो संज्ञा होती है अर्थात् एक देव और दूसरी मनुष्य। सत्य भाषण, सत्य स्वीकार और सत्य कर्म करने वाले देव कहलाते हैं। सत्यव्रत आचरण करने वाले देव कीर्तिमानों में भी कीर्तिमान होकर सर्वदा आनन्द में रहते हैं परन्तु उनसे विपरीत आचरण करने वाले मनुष्य दुःख को प्राप्त होकर प्रतिदिन पीड़ित ही रहते हैं।

ऋषयों मन्त्रद्रष्टारः अर्थात् वेद मन्त्रों के अर्थ जानने वाले ऋषि कहलाते हैं।

पितरों की कोटि में निम्नलिखित हैं- सोमसद्, अग्निष्वात्ता, बर्हिषद्, सोमपा, हविर्भुज, आज्यपा, सुकालिन, यमराज, पितृ, पितामह, प्रपितामह, मातृ, पितामही, प्रपितामही, सगोत्र, आचार्य तथा सम्बन्धी आदि। महर्षि ने पितरों का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है ''जो ईश्वर और सोमयज्ञ में निपुण और जो शान्त्यादिगुण सहित हैं वे सोमसद् कहाते हैं। अग्नि जो परमेश्वर वा भौतिक उनके गुण ज्ञात करके जिनने अच्छे प्रकार अग्निविद्या सिद्ध की है, उनको अग्निष्वात्ता कहते हैं। जो सबसे उत्तम परब्रह्म में स्थिर होके शम दम सत्य विद्यादि उत्तम गुणों में वर्तमान हैं, उनको बर्हिषद् कहते हैं। जो यज्ञ करके सोमलतादि उत्तम औषधियों के रस के पान करने और कराने वाले हैं, तथा जो सोमविद्या को जानते हैं, उनको सोमपा कहते हैं। जो अग्निहोत्रादि यज्ञ करके वायु और वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा सब जगत् का उपकार करते, और जो यज्ञ से अन्नजलादि की शुद्धि करके खाने पीने वाले हैं उनको हविर्भुज कहते हैं। आज्य कहते हैं घृत स्निग्धपदार्थ और विज्ञान को।

जो उसके दान से रक्षा करने वाले हैं उनको आज्यपा कहते हैं। मनुष्य शरीर को प्राप्त होकर ईश्वर और सत्यविद्या के उपदेश का जिनका श्रेष्ठ समय और जो सदा उपदेश में ही वर्तमान हैं उनको सुकालिन कहते हैं। जो पक्षपात को छोड़के सदा सत्य न्याय व्यवस्था ही करने में रहते हैं, उनको यमराज कहते हैं। जो वीर्य के निषेकादि कर्मों को करके उत्पत्ति और पालन करने और चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्याश्रम से विद्या को पढ़े उसका नाम पिता और वसु है। जो पिता का पिता हो और चवालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य से विद्याभ्यास कर पक्षपात रहित होकर दुष्टों को रूलाने वाला है। उसका नाम पितामह है। जो पितामह का पिता और आदित्य के समान उत्तम गुणों का प्रकाशक अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्याश्रम से विद्या पढ़के सब जगत् का उपकार करता हो, उसको प्रपितामह और आदित्य कहते हैं तथा जो पित्रादिकों के तुल्य पुरुष हैं उनकी भी पित्रादिकों के तुल्य सेवा करनी चाहिए। पित्रादिकों के समान विद्या स्वभाव वाली स्त्रियों की भी अत्यन्त सेवा करनी चाहिए। जो समीपवर्ती ज्ञाति के योग्य पुरुष हैं, वे भी सेवा करने के योग्य हैं। जो पूर्ण विद्या के पढ़ाने वाले, श्वसुरादि सम्बन्धी तथा उनकी स्त्री हैं उनकी यथायोग्य सेवा करनी चाहिए।''

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्।
स्वधा स्थ तर्पयत् में पितॄन्।।
(यजु. 19/58)

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में पञ्चमहायज्ञ विषय के अन्तर्गत महर्षि ने उपर्युक्त मन्त्र का अर्थ इस प्रकार किया है-

''पिता वा स्वामी अपने पुत्र, पौत्र स्त्री और नौकरों को इस प्रकार आज्ञा देवे कि जो जो हमारे मान्य पिता, पितामहादि, माता, मातामहादि और आचार्य तथा इनसे भिन्न भी विद्वान लोग, जो अवस्था वा ज्ञान में बड़े और मान्य करने योग्य हैं तुम लोग उनकी उत्तम-उत्तम जल, रोगनाश करने वाले उत्तम अन्न, सब प्रकार के उत्तम फलों के रस आदि पदार्थों से नित्य सेवा किया करो, कि जिससे वे प्रसन्न होके तुम लोगों को सदा विद्या देते रहें। क्योंकि ऐसा करने से तुम लोग भी सदा प्रसन्न रहोगे और ऐसा विनय सदा रक्खो कि हे पूर्वोक्त पितर लोगों! आप हमारे अमृतरूप पदार्थों के भोगों से तृप्त होइये, और हम लोग जो जो पदार्थ आप लोगों की इच्छा के अनुकूल निवेदन कर सकें, उन-उन की आज्ञा किया कीजिए। हम लोग मन, वचन, और कर्म से आपके सुख करने में स्थित हैं, आप किसी प्रकार का दुःख न पाइये। क्योंकि जैसे आप लोगों ने बाल्यावस्था और ब्रह्मचर्याश्रम में हम लोगों को सुख दिया है वैसे ही हमको भी आप लोगों का प्रत्युपकार करना अवश्य चाहिए, कि जिससे हम लोगों को कृतघ्नता दोष न प्राप्त हो।''

यज्ञोपवीत के तीन सूत्र ऋषि ऋण, देव ऋण और पितृऋण से उऋण होने की स्मृति दिलाते हैं। आर्यजन तीनों प्रकार के ऋणों से उऋण होने के लिए ऋषियों, देवों और पितरों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के पक्ष में रहे हैं। वे न तो कभी उनके विपक्ष में रहे और न कभी विरोध में रहेंगे। विरोध तो अनार्यों द्वारा किया जाता है आर्यों द्वारा नहीं। पितरों में श्रद्धा रखनी चाहिए। पितरों का तर्पण और श्राद्ध करना सभी का कर्त्तव्य है।

दिवंगत माता पितादि के चरित्र को श्रद्धापूर्वक धारण करके आचरण करना भी श्राद्ध की कोटि में आता है। दैनिक पञ्चमहायज्ञ करना प्रत्येक द्विज का कर्त्तव्य है। पितरों की सेवा सुश्रूषा करना सभी का धर्म है। जब व्यक्ति सेवा करने को तत्पर हो और बिना कहे ही उनकी सुख सुविधाओं को पूर्ण करके तृप्त कर दे तो समझो पितृतर्पण हो रहा है। इसी प्रकार उनकी श्रद्धा से सेवा करना श्राद्ध है। जिस परिवार में दैनिक यज्ञ होता है वह कुल धन्य है।

पौराणिक बन्धु दैनिक न सही किन्तु वे वर्ष में दो सप्ताह आश्विन कृष्णपक्ष अर्थात् पितृपक्ष के समय तो पितरों में श्रद्धा रखते हुए श्राद्ध करते ही हैं। इसमें किञ्चित अन्तर यह है कि जीवित पितरों को यहां स्थान प्राप्त नहीं हो पाया अर्थात् यह पितृपक्ष मात्र मृतक पितरों की श्रद्धा तक ही सीमित बनकर रह गया है। यह बहुत शोक का विषय है। क्या अच्छा हो यदि सभी व्यक्ति दुराग्रह त्याग कर वैदिक पथ के अनुगामी होकर धर्म की मूल भावना को हृदयंगम करके इहलोक और परलोक को सफल बनाने के लिए पितृपक्ष में ही सही पितरों के पक्ष में दृढ़व्रत लें अर्थात् पितृपक्षी हो कदापि पितरों से विमुख न हों। परमपिता परमात्मा कहता है- अनव्रतः पितुः पुत्रः अर्थात् पुत्र पिता का अनुव्रती हो। यदि पुत्र पिता का अनुव्रती होगा तो पुत्र की सन्तान भी उसका अनुगमन करने वाली होगी। इस प्रकार से सनातन चली आ रही वैदिक परम्परा का निर्वहन अबाधगति से भविष्य में भी होता रहेगा इसमें किञ्चित भी सन्देह नहीं।

संसार के भौतिक पदार्थों का संचय अर्थ से सम्भव है अर्थात् सुख सुविधाएं धन से क्रय की जा सकती हैं परन्तु पितरों का आशीर्वाद क्रय नहीं किया जा सकता। यदि पितर श्रद्धापूर्वक प्रदान किये गये पदार्थों अर्थात् श्राद्ध कर्म से तृप्त होंगे तो निश्चय ही उनके श्रीमुख से शुभाशीर्वाद की वर्षा होगी और उनके तर्पण से सन्तति को भी पितृऋण से उऋण होने की अवस्था प्राप्त होगी। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के अनुसार वैसे तो श्राद्ध कर्म दैनिक करना योग्य है परन्तु यदि ऐसा कभी सम्भव न हो तो प्रत्येक अमावस्या को तो श्राद्ध कर्म अवश्य करना चाहिए।

- वैयक्तिक सहायक जनपद न्यायाधीश, गाजियाबाद

सोशल मीडिया के माध्यम से स्वामी आर्यवेश जी से जुड़ें

आर्य समाज के त्यागी, तपस्वी एवं तेजस्वी संन्यासी स्वामी आर्यवेश जी से जुड़ने के लिए इस लिंक पर क्लिक करें :- ***www.facebook.com/SwamiAryavesh*** व फेसबुक पेज को लाइक करें तथा अन्य मित्रों को भी प्रेरित करें।

ई-मेल : aryavesh@gmail.com

दूरभाष : 011-23274771, 42415359

प्रतिष्ठा में :–

अवितरण की दशा में लौटाएँ –
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
"दयानन्द भवन" 3/5 आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002

!!ओ३म्!!

सादर निमंत्रण

लाखों बंधुआ मजदूरों को पुनर्वासित करवाने वाले, मानव अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय प्रवक्ता, वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को समर्पित क्रांतिकारी आर्य संन्यासी स्वामी अग्निवेश जी की

चतुर्थ पुण्यतिथि के अवसर पर

स्मृति सभा

दिनांक : 11 सितम्बर, 2024 (बुधवार) ● समय – प्रातः 10 बजे से 1 बजे तक

–: कार्यक्रम स्थल :–

"महर्षि दयानन्द भवन" 3/5 आसफ अली रोड (रामलीला मैदान), नई दिल्ली–110002

आयोजक :– धर्म प्रतिष्ठान, 7 जन्तर–मन्तर रोड, नई दिल्ली–110001 सम्पर्क :– 011–23367943

शुभ सूचना ओ३म् शुभ सूचना

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रकाशित

ऋषिवर दयानन्द सरस्वती द्वारा विरचित अद्भुत और अनुपम कालजयी ग्रन्थ

1100/– रुपये में उपलब्ध है

सत्यार्थ प्रकाश

बड़े साईज में उपलब्ध

हिन्दी के एक बड़े सत्यार्थ प्रकाश के साथ छोटे साईज का अंग्रेजी का सत्यार्थ प्रकाश मुफ्त में उपलब्ध है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी द्वारा लिखित कालजयी ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' को आप अपने आर्य समाज, स्कूल, कॉलेज में रखें तथा इष्ट मित्रों एवं नव-दम्पत्तियों को भेंट करके पढ़ने के लिए प्रेरित करें।

बड़े साईज का सत्यार्थ प्रकाश बढ़िया कागज तथा सुन्दर बाईंडिंग के साथ तैयार कराया गया है जिसे बिना चश्मे के भी पढ़ा जा सकता है।

हिन्दी के बड़े सत्यार्थ प्रकाश के साथ जो अंग्रेजी का सत्यार्थ प्रकाश दिया जा रहा है वह भी सुन्दर कागज तथा आकर्ष बाईंडिंग में तैयार कराया गया है

20X30 का चौथा साईज

उपरोक्त पुस्तक को मंगाने के लिए नीचे दिये गये दूरभाष नम्बर तथा ई–मेल आई.डी. पर बुक कराकर मंगा सकते हैं। डाक से मंगाने पर डाक व्यय का अतिरिक्त खर्च देना होगा।

–: प्रकाशक :–

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, "दयानन्द भवन" 3/5 आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002

दूरभाष – 011–23274771, 011–42415359, मो.:–9868211979, 8218863689

ई-मेल : ***sarvadeshikarya@gmail.com, sarvadeshik@yahoo.co.in***

प्रो० विट्ठलराव आ५, सभा मंत्री, प्रकाशक व मुद्रक द्वारा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, 3/5 महर्षि दयानन्द भवन, (रामलीला मैदान/आसफ अली रोड), नई दिल्ली-110002 के लिए प्रकाशित तथा ज्योति प्रिंटिंग प्रेस, ई-94, सैक्टर-6, नोएडा-201301 से प्रकाशित एवं मुद्रित। (दूरभाष : 011-23274771, 42415359)
सम्पादक : प्रो० विट्ठलराव आर्य (सभा मन्त्री) मो.:0-9849560691, 0-9013251500 ई-मेल : sarvadeshik@yahoo.co.in, sarvadeshikarya@gmail.com वैबसाइट : www.vedicaryasamaj.com
वैदिक सार्वदेशिक साप्ताहिक में छपे लेखों तथा विचारों से सम्पादक या सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की सैद्धान्तिक मतैक्यता होना अनिवार्य नहीं है।